भगवान् परशुराम



डा० वीराचार्य शास्त्री

।। श्री भगवते परशुरामाय नमः।।

भगवान् परशुराम

ब्रह्मर्षि
शास्त्रार्थकेसरी, डॉ० वीराचार्य शास्त्री, एम०ए०, पीएच०डी०, साहित्याचार्य
वेदमार्तण्ड, विद्याभास्कर

प्रकाशक
माधव पुस्तकालय
१०३-ए, कमला नगर
दिल्ली-११०००७

● प्रथम आवृत्ति
भगवान परशुराम जयन्ती
अक्षय तृतीया, २०५१

● मूल्य : ३० रुपए

मुद्रापक :
अरुणेश कौशिक एम० ए०
१०३-ए, कमला नगर
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : २५२४३२५

मुद्रक:
मयंक प्रिंटर्स,
६३, नाईवाला, करोलबाग,
नई दिल्ली-११०००५


ॐ जामदग्न्याय विद्महे महावीराय धीमहि तन्नो परशुरामः प्रचोदयात् ।

उद्गार

धर्मचन्द्रोदय पीठाधीश्वर

अनन्त श्रीविभूषित, विश्वाचार्य, श्रीमद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री स्वामी
अनिरुद्धाचार्य वेङ्कटाचार्य जी महाराज

(गुजरात)

का

शुभाशीर्वचन

श्रीमन्नारायणावतार, भृगुवंशावतंस भगवान परशुराम शास्त्र तथा शस्त्र के अनुपम धौरेय अवतार थे। 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।' राष्ट्रीय संक्रान्तिकाल में ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण का शास्त्रीय विधान है। जामदग्न्य ने मर्यादा की स्थापना के लिये शस्त्रग्रहण किया। उनके उदात्तचरित्र के प्रेरणापप्रद प्रसंगों को आधार बनाकर शास्त्रार्थ केसरी डा० वीराचार्य शास्त्री ने "भगवान् परशुराम" की रचना करके स्वकर्तव्य का कुशलतापूर्वक सफल निर्वाह किया है। लेखक के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से एवं धार्मिक जगत् में उनके महनीय योगदान से आस्तिक समाज सुपरिचित है। मैं उन्हें भूयोभूयः शुभाशीर्वाद से आप्यायित करता हूं। मङ्गलमस्तु।

अनिरुद्धाचार्य वेङ्कटाचार्य

चान्दोद (गुजरात)

उद्‌गार

कालिकापीठाधीश्वर अनन्तश्री विभूषित
श्री योगी सुरेन्द्रनाथ जी महाराज "तन्त्रालङ्कार"
की
शुभाशंसा

शास्त्रार्थमहारथी, विश्वविश्रुतकीर्ति, स्वनाम धन्य श्री पं० माधवाचार्य शास्त्री की गरिमामयी परम्परा के सकौशल निर्वाहकर्ता शास्त्राथकेसरी डा० वीराचार्य शास्त्री द्वारा लिखित "भगवान् परशुराम"" रचना को देख कर परम परितोषानुभूति से गद्गद् हूं। भार्गव शिरोमणि रेणुकानन्दन का विराट् व्यक्तित्व ओज का विग्रहवान् स्वरूप है। उनका शौर्य, उनका जनरक्षण का अभियान, दुष्टदलन का उनका अप्रतिम साहस और इक्कीस बार पृथ्वी को विजय करके दान करने की अपरिग्रही उनकी वृत्ति— प्रेरणा का अजस्र स्रोत है। सरस सरल भाषा शैली में लिखित यह कृति आज के सन्दर्भ में नवस्फूर्ति का, नव कर्तव्य-बोध का और सुचिन्तित आस्तिकभाव का सञ्चार करने वाली है। मैं पराम्बा भगवती शक्ति के चरणों में प्रार्थना करता हूं कि वे लेखक, प्रकाशक एवं सहयोगी वर्ग को अपनी मङ्गलमयी कृपा से सर्वविध अभयुदय प्रदान करें। 'बलबुद्धिसमृद्धिरस्तु।'

योगी सुरेन्द्रनाथ

महन्त निवास
कालका मन्दिर, नई दिल्ली

॥ आभार प्रदर्शन ॥

"भगवान् परशुराम" के प्रकाशन में जिन महानुभावो ने विविध प्रकार का सहयोग किया है उनके प्रति आभार व्यक्त करते हुए हम श्री भगवान् परशुराम के पावन चरणारविन्द में उनकी सर्वविध समृद्धि सफलता और दीर्घायु की कामिना करते हैं।

१. श्री मांगेराम शर्मा ""जातुकर्ण""
२. श्री जगदीश दिगपाल एडवोकेट
३. श्री रमेश रामदेव
४. श्री धर्मपाल रामपाल
५. श्री अशोक कौशि क
६. श्री विनोद वत्स
७. श्री आनन्दनाथ

।। नमः परशुधारिणे।।

पुरोवाक्

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि।।

भगवान परशुराम युगातीत विभूति हैं। त्रेता द्वापर तथा कलियुग में अपने लोकोत्तर पराक्रम, त्याग और धर्म संरक्षण के अनुपम विधान से वे जगद्वन्द्य हैं। धर्मग्लानिनिवृत्त्यर्थ अवतरित श्रीमन्नारायण के अवतारों में षष्ठ अवतार के रूप में प्रतिष्ठित इस महापुरुष ने युग-युग से शोषित, पीड़ित एवं दीन-दलित जनों को नवजीवन प्रदान किया। आततइयों का शिरश्छेदन करके न्याय की प्रतिष्ठा की। कल्याणमार्ग का उद्घाटन करके उन्होंने समरसता पर आधारित लोकतन्त्र का शासन जनता को प्रदान किया—

शोषण दमन और छल-बल का दोष जहाँ भी पाया।
वीर परशुधर ने जनता में जा जनतन्त्र जगाया।।

परशुराम ने असमर्थ और असहायों को अपने पौरुष से सम्बल प्रदान किया। इक्कीस बार उद्दण्ड, लोकपीड़क अनीतिकर्मी दुष्टों का संहार करके प्राप्त आसेतु-हिमाचल पृथ्वी को, ब्राह्मणों को दान करके अपरिग्रह का विलक्षण उदाहरण उपस्थित किया। तप, शौर्य, ज्ञान, संघर्ष, न्याय, सदाचार, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के साक्षात् विग्रह परशुराम वीतराग व्यक्तित्व के महाप्राण महापुरुष थे।

चिरकाल से उनके प्रखर तेजोदीप्त जीवन को आधार बनाकर कुछ लिखने की बलवती आकांक्षा उपचेतन में पल रही थी। बन्धुवर श्री मांगेराम शर्मा (अध्यक्ष अखिल भारतीय ब्राह्मण महासभा) श्री जगदीश दिगपाल एडवोकेट (अध्यक्ष दिल्ली प्रान्तीय ब्राह्मण महासभा) श्री रमेश रामदेव (महामंत्री दिल्ली प्रा० ब्राह्मण सभा) श्री धर्मपाल रामपाल (संयोजक-परशुराम प्रतिष्ठान) एवं श्री अशोक कौशिक (पत्रकार) के स्नेहानुरोध पर उस आकांक्षा की पूर्ति का यह अवसर मेरे लिए परितोषप्रद है। संस्कृत वाङ्मय परशुराम के चरित्र से उद्भासित है। उस अद्वितीय मेधाधनी के चरणों में सश्रद्ध नमन करते हुए प्रस्तुत कृति पाठकों को समर्पित करता हूँ।

—वीराचार्य शास्त्री

परशुराम जयन्ती
अक्षय तृतीया
वैक्रमाब्द-२०५१

विषयानुक्रमाणिका

श्री परशुरामाष्टकम्

शुभ्रदेहं सदा क्रोधरक्तेक्षणम्
भक्तपालं कृपालुं कृपावारिधिम्
विप्रवंशावतंसं धनुर्धारिणम्
भव्ययज्ञोपवीतं कलाकारिणम्
यस्य हस्ते कुठारं महातीक्ष्णकम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे।।१।।

सौम्यरूपं मनोज्ञं सुरैर्वन्दितम्
जन्मतः ब्रह्मचारिव्रते सुस्थिरम्
पूर्णतेजस्विनं योगयोगीश्वरम्
पापसन्तापरोगादिसंहारिणम्
दिव्यभव्यात्मकं शत्रुसंहारकम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे।।२।।

ऋद्धिसिद्धिप्रदाता विधाता भुवो
ज्ञानविज्ञानदाता प्रदाता सुखम्
विश्वधाता सुत्राताऽखिलं विष्टपम्
तत्वज्ञाता सदा पातु माम् निर्बलम्
पूज्यमानं निशानाथभासं विभुम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे।।३।।

दुःख दारिद्र्यदावाग्नये तोयदम्
बुद्धिजाड्यं विनाशाय चैतन्यदम्
वित्तमैश्वर्यदानाय वित्तेश्वरम्
सर्वशक्तिप्रदानाय लक्ष्मीपतिम्
मंगलं ज्ञानगम्यं जगत्पालकम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे।।४।।

यश्च हन्ता सहस्रार्जुनं हैहयम्
त्रैगुणं सप्तकृत्वा महाक्रोधनैः
दुष्टशून्या धरा येन सत्यं कृता
दिव्यदेहं दयादानदेवं भजे
घोररूपं महातेजसं वीरकम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे।।५।।

मारयित्वा महादुष्ट भूपालकान्
येन शोणेन कुण्डेकृतं तर्पणम्
येन शोणीकृता शोणनाम्नी नदी
स्वस्य देशस्य मूढा हताः द्रोहिणः
स्वस्य राष्ट्रस्य शुद्धिः कृता शोभना
रेणुकानन्दनं जामदग्न्य भजे ।।६ ।।

दीनत्राता प्रभो पाहि माम् पालक!
रक्ष संसाररक्षाविधौ दक्षक!
देहि संमोहनी भाविनी पावनी
स्वीय पादारविन्दस्य सेवा परा
पूर्णमारुण्यरूपं परं मंजुलम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे ।।७ ।।

ये जयोद्घोषकाः पादसंपूजकाः
सत्वरं वांछितं ते लभन्ते नराः
देहगेहादिसौख्यं परं प्राप्य वै
दिव्यलोकं तथान्ते प्रियं यान्ति ते
भक्तसंरक्षकं विश्वसम्पालकम्
रेणुकानन्दनं जामदग्न्यं भजे ।।८ ।।



भगवान् परशुराम

भार्गव वंश परम्परा

तत्तद् राजन्य बन्धुत्रसित मुनि जन क्लेश सञ्जात कोपः,
श्री विष्णू रामरूपः सदयमवतरद् वह्नि वंशावतंसः।
योऽखण्ड ब्रह्मचारी प्रबल बल निधिर्वेद मार्ग प्रसारी,
वन्देऽहं जामदग्न्यं वर परशुधरं रेणुकानन्दनन्तम्।।

धर्म संरक्षरण, मानवीय मूल्यों की स्थापना, अन्याय का प्रतिरोध तथा दुर्दमनीय अत्याचारियों के दमन के लिए श्रीमन्नारायण स्वयं अवतरित होते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् की आत्मस्वीकृति स्पष्ट उद्घोषित है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। (गीता ४/७,८)

प्रत्येक कालखण्ड में विशेष परिस्थितियों में भगवान् आते रहे हैं। पौराणिक साहित्य में भगवान् के वेद प्रतिपादित चौबीस अवतारों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, किन्तु इसमें दस को मुख्य माना जाता है, मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध तथा कात्कि। इनमें भगवान् परशुराम छठे अवतार हैं। इनका व्यक्तित्व भारतीय साहित्य में अपने ओज और तेज के लिए विख्यात रहा है–

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि।।

वास्तव में परशुराम शास्त्र और शस्त्र की समन्वित संस्कृति के संस्थापक अवतार हैं। मुख में चारों वेदों का ज्ञान तथा पीठ पर बाण सहित धनुष को धारण करने वाले परशुराम शाप और शर दोनों से आततायियों का संहार करते हैं। भविष्यदर्शी, क्रान्तदृष्टि वाले राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर ने देश की वर्तमान स्थिति को परिलक्षित करके ही भगवान् परशुराम के प्राकट्य में अनन्तानन्त सम्भावनाओं और शुभकामनाओं की प्रतीति की है–

मुख में वेद पीठ में तरकस कर में कठिन कुठार।
सावधान! ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार।।

परशुराम के प्रभामण्डल का प्रभाव उस समय दृष्टिगोचर होता है जब वे एकमात्र ऐसे अवतार माने जाते हैं जिन्होंने एकाकी ही दुष्टों का समूल विनाश किया। राम के साथ

वानर-भालुओं की सेना थी, कृष्ण के साथ भी पाण्डव और यदुवंशी आदि थे। परशुराम के अतिरिक्त अन्य सभी अवतार अपने अवतार के मुख्य प्रतिपाद्य को पूर्ण करके स्वधाम को चले गये परन्तु परशुराम आज भी चिरजीवी के रूप में विद्यमान हैं। पौराणिक वाङ्मय में आठ चिरजीवी माने जाते हैं—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।
मार्कण्डेयस्तथाष्टमः

हैहयवंशी अत्याचारी शासकों को अनुशासित करनेवाले परशुराम के लिए 'भृगुपति' शब्द का प्रयोग महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' में तथा तुलसी के रामचरित मानस में प्राप्त होता है—

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्,
हंसद्वारं भृगुपति यशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।। (पूर्व मेघ ६)

अर्थात् हे मेघ! तुम हिमालय की उन-उन विशेष चोटियों एवं उनके मूल में भृगुपति परशुराम द्वारा निर्मित उस हंसमार्ग से अलकापुरी को जाना, जिसे क्रौञ्च छिद्र के नाम से भी स्मरण किया जाता है। भगवान् परशुराम ने अपने बाणों की नोक से हिमालय पर्वत को छेदकर (काटकर) उसे बनाया है, अतः वह टेढ़ा बना हुआ है।

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला।।

विदेहराज जनक की सभा में, विकट वेषधारी भृगुपति (परशुराम) को देखते ही सब राजा भय से व्याकुल होकर उठे और—

पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा।।

अपने पिता के नाम सहित अपना नाम कहते हुए सब दण्ड प्रणाम करने लगे।

इससे यह तो निश्चित ही कहा जा सकता है कि भगवान् परशुराम भृगुकुल में अवतरित हुए थे।

भृगु—महर्षि भृगु कौन थे? इनकी वंश परम्परा में परशुराम कहाँ थे? इसका संकेत ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में प्राप्त होता है। जिनके आधार पर, प्रजापति ब्रह्मा के अनेक पुत्रों में ज्ञान-विज्ञान में निष्णात तीन पुत्र थे भृगु, अंगिरा और अत्रि। इनमें भृगु ज्येष्ठ थे। ऋषि परम्परा में भृगु ज्ञान-विज्ञान निष्णात सत्यवादी, निर्भीक, निष्पक्ष तथा ज्योतिष विद्या के महान आचार्य थे।

कथा प्रसिद्ध है कि देवताओं ने त्रिदेवों की (ब्रह्मा, विष्णु, महेश की) परीक्षा लेने के लिए महर्षि भृगु को भेजा। वे सर्वप्रथम कैलाश पर्वत पर भगवान शंकर के पास गये बिना सामान्य शिष्टाचार का निर्वाह किये वे शंकर के आसन की ओर बढ़े, भोले बाबा ने करारी डाँट लगाई, भृगु खेद ज्ञापन करके ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास गये वहाँ भी ऐसा

व्यवहार किया कि ब्रह्मा भी रुष्ट हो गये। तब भृगु ने वैकुण्ठ में जाकर शेषशैय्या पर शयन करते विष्णु की छाती में चरण प्रहार किया विष्णु भगवान तत्काल उठे और ऋषि के चरणों में सविनय प्रणाम करते हुए निवेदन किया कि ऋषिवर! यदि कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करें पर मेरा वक्षस्थल तो दैत्य राक्षसों के शस्त्र प्रहार को सहन करते करते बहुत कठोर हो गया है आपके चरण कोमल हैं लाइये दबा दूँ। भृगु ने प्रसन्न होकर विष्णु को शान्त और महान् घोषित किया। भृगु का चरण चिह्न "श्रीवत्स" के नाम से विष्णु के वक्षस्थल पर विराजमान माना जाता है। इस घटना से लक्ष्मी ने आवेश में आकर ब्राह्मणों के यहाँ जाना ही छोड़ दिया। एक बार सामान्य बातचीत के अन्तर्गत विष्णु ने पूछा लक्ष्मी देवी! तुम ब्राह्मणों के पास क्यों नहीं जाती? उन्हें दरिद्र क्यों रखती हो? लक्ष्मी ने उत्तर दिया महाराज! कई कारण है—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषा
दाबाल्याद् विप्रवर्यैः स्ववदन विवरे धारिता बैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्त पूजा निमित्तम्
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलसदनं नाथ! नित्यं त्यजामि।।

हे प्राणनाथ! अगस्त्य नामक ब्राह्मण मेरे पिता समुद्र को पी गया, भृगु ने आपके वक्षस्थल पर अपने चरण से प्रहार किया, ब्राह्मणों के यहाँ बाल्यावस्था से ही मेरी बैरिणी (सरस्वती) मुख में धारण की जाती है और ये ब्राह्मण शिव की पूजा के लिए मेरे घर (कमल) को प्रतिदिन तोड़ डालते हैं इसलिए मैं उनके घर का परित्याग करती हूँ।

लक्ष्मी की इस बात को भृगु ने भी सुना। बस, उन्होंने 'भृगु संहिता' नामक ऐसे ग्रन्थ की रचना की जो ज्योतिष के क्षेत्र में आज भी अनुपम माना जाता है और 'भृगु संहिता' का थोड़ा अंश भी जिस ब्राह्मण के पास होता है लक्ष्मी उसके चरणों में लोटती है। भृगु विलक्षणमेधा के धनी थे और सञ्जीवनी विद्या के आविष्कर्ता थे।

अध्ययन अध्यापन में निरन्तर संलग्न रहने वाले भृगु अग्नितत्त्व के प्रखर पारखी थे और "काल विज्ञान" के धुरन्धर वैज्ञानिक।

पौलोमी के गर्भ से, भृगु के भी तीन पुत्र हुए कवि (शुक्राचार्य), च्यवन तथा आप्नुवान्। आप्नुवान् के पुत्र और्व थे। और्व के ऋचीक, ऋचीक से जमदग्नि और जमदग्नि से रेणुका द्वारा परशुराम का जन्म हुआ।

भगवान् परशुराम के पिताश्री जमदग्नि के जन्म की गाथा भी यहाँ उल्लेखनीय है। परशुराम के अवतार धारण का प्रयोजन इसी की कड़ी है।

महाभारत के वनपर्व में तीर्थयात्रा प्रसंग के अन्तर्गत महर्षि वेदव्यास ने एक सौ पन्द्रहवें अध्याय में भगवान परशुराम के अवतरण तक की कथा विस्तार से निखी है। परशुराम के अनन्य भक्त अकृतव्रण से युधिष्ठिर प्रश्न करते हैं और वे उत्तर देते हैं। युधिष्ठिर विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं—

भवाननुगतो रामं जामदग्न्यं महाबलम्।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पूर्ववृत्तस्य कर्मणः।।
स भवान् कथयत्वद्य यथा रामेण निर्जिताः।
आहवे क्षत्रियाः सर्वे कथं केन च हेतुना।। (महा० वनपर्व ११५/७,८)

पूज्यवर, आप जमदग्नितनय परशुराम के अनुयायी हैं तथा उनके हमसे पूर्ववर्ती सारे कार्यों के प्रत्यक्षदर्शी भी हैं। इसलिए बतलाने की कृपा कीजिए कि भार्गववंशी परशुराम ने युद्ध में सारे क्षत्रियों को किस कारण से जीता था।

अकृतव्रण ने उत्तर में विस्तारपूर्वक बतलाया—

हन्त ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम्।
भृगूणां राजशार्दूल वंशे जातस्य भारत।। (वही ९)

हे भरतकुलोत्पन्न राजसिंह, भार्गव परशुराम के महत्त्वपूर्ण प्रसंग को मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

रामस्य जामदग्न्यस्य चरितं देवसम्मितम्।
हैहयाधिपतेश्चैव कार्तवीर्यस्य भारत।।
रामेण चार्जुनो नाम हैहयाधिपतिर्हतः।
तस्य बाहुशतान्यासंस्त्रीणिसप्त च पाण्डव।। (वही १०,११)

देवताओं के द्वारा भी प्रशंसित परशुराम का चरित्र तथा हैहयराज कार्तवीर्य का आख्यान सुनो कि सहस्रबाहु हैहयराज का वध परशुराम ने किस कारण से किया।

दत्तात्रेय प्रसादेन विमानं काञ्चनं तथा,
ऐश्वर्यं सर्वभूतेषु पृथिव्यां पृथिवीपते।
अव्याहतगतिश्चैव रथस्तस्य महात्मनः,
रथेन तेन तु सदा वरदानेन वीर्यवान्।
ममर्द देवान् यक्षांश्च ऋषींश्चैव समन्ततः,
भूतांश्चैव स सर्वांस्तु पीडयामास सर्वतः।। (वही ११५/११-१४)

हे राजन्! भगवान दत्तात्रेय की अनुकम्पा से कार्तवीर्य अर्जुन को एक सोने का विमान प्राप्त हुआ। पृथिवी-आकाश में समानरूप से गतिशील उस रथ के प्रभाव से सहस्र बाहु कार्तवीर्य ने देवताओं, यक्षों एवं ऋषिगणों के साथ-साथ सभी प्राणियों को पीड़ित किया हुआ था। दत्तात्रेय के वरदान एवं दिव्यरथ के प्रभाव से सहस्रबाहु अजेय सा बन चुका था। उसके अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। एक बार स्वर्गाधिपति देवराज इन्द्र अपनी अर्धाङ्गिनी शची के साथ क्रीड़ा मग्न थे, तब सहस्रबाहु ने उन पर भी आक्रमण कर दिया। निरंकुश और अत्याचारी सहस्रबाहु के उत्पीड़न से संत्रस्त देवता, ऋषिमुनि और गन्धर्व इन्द्र के साथ भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। सब की प्रार्थना को विष्णु ने शान्तभाव से सुना और

कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के वध की योजना से सब को आश्वस्त किया कि मैं स्वयं शीघ्र ही अवतरित होकर उसका संहार करूंगा और पृथ्वी को उसके अत्याचारों से मुक्त करूँगा।

अकृतव्रण ने भगवान् परशुराम के आख्यान को आगे बढ़ाते हुए उनके मातामह के कुल के विषय में युधिष्ठिर को बतलाया कि उस समय, जब कार्तवीर्य का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, कान्यकुब्ज प्रदेश में गाधि नाम के राजा राज्य करते थे। महाराजा गाधि चन्द्र वंश के अवतंस थे। उनकी वंश परम्परा भी सुप्रतिष्ठित थी। पुरुरवा के सुविख्यात कुल में जह्नु नाम के राजा हुए जिन्होंने गङ्गा का पान कर लिया था। (इसलिए गङ्गा का नाम जाह्नवी भी है) जह्नु के पुरु, पुरु के बलाक और बलाक के अज उत्पन्न हुए। अज के कुश और कुश के कुशाम्बु हुए। इन कुशाम्बु के यहाँ गाधि का जन्म हुआ।

तस्य जह्नुः सुतो गंगां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत्।
जह्नोस्तु पुरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः।।
ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुस्तनयो वसुः।
कुशनाभश्च चत्वारा गाधिरासीत् कुशाम्बुजः।। (श्रीमद्भागवत ९/१५/३-४)

महाराज गाधि की एकमात्र सन्तान थी सत्यवती। सत्यवती अपने दिव्य सौंदर्य एवं सुशील स्वभाव के कारण विख्यात थी। जब वह विवाह योग्य आयु में पहुँची तो भृगुपुत्र महर्षि ऋचीक, महाराजा गाधि के पास उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचे। ऋचीक ने उनकी पुत्री को स्वपत्नी बनाने की प्रार्थना की। ऋचीक की भावना का आदर करते हुए गाधि ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि हमारे पूर्वजों ने ऐसा नियम निर्धारित किया हुआ है कि हमारी कन्या से जो भी विवाह करेगा उसे कन्या के पिता को एक हजार श्याम कर्ण घोड़े शुल्क रूप में देने होंगे। गाधि ने ऋचीक के उत्तम भृगुकुल की तथा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसाकी, उनके ब्रह्मतेज और पौरुष से वे प्रभावित भी हुए परन्तु पूर्वजों द्वारा निर्धारित नियम पालन के कारण अपनी विवशता व्यक्त की।

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः।
वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत्।।
एकतः श्याम कर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम्।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम्।।
इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम्।
आनीय दत्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम्।। (श्रीमद्भागवत ९/१५/५-६)

ऋचीक ने वरुण के पास से एक हजार श्याम कर्ण अश्व लाकर महाराजा गाधि को प्रदान किये, जिस स्थान पर वे अश्व प्रदान किये गये थे वह स्थान 'अश्वतीर्थ' के नाम से विख्यात हुआ।

तदश्वतीर्थं विख्यातमुत्थिता यत्र ते हयाः।। (महा० वन० ११५/२८)

गाधि ने अपनी परम सुन्दरी पुत्री का विवाह संस्कार ऋचीक से सम्पन्न किया। गंगा

तट पर होने वाले इस मांगलिक परिणयोत्सव में भाग लेने के पश्चात् वरयात्री के रूप में समागत देवता अपने-अपने स्थानों पर लौट गये। ऋचीक ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

महर्षि भृगु को जब यह समाचार मिला कि उनके ज्येष्ठ पुत्र ऋचीक ने गाधि पुत्री सत्यवती से विवाह करके गृहस्थाश्रम में पदार्पण किया है तो वे सौभाग्यवती पुत्रवधू को शुभाशीर्वाद प्रदान करने के लिए ऋचीक के आश्रम में पधारे। नवपरिणीत दम्पति ऋचीक तथा सत्यवती ने सादर चरण-स्पर्श किया। भृगु भी आनन्दित हुए—

तं विवाहकृतं राजन् सभार्यमवलोकक:।
आजगाम भृगुः श्रेष्ठ पुत्रं दृष्ट्वा ननन्द च।। (वही ११५/३)

पति-पत्नी ने सुर नर मुनि जन वन्दित महर्षि भृगु की कई दिन श्रद्धापूर्वक सेवा की। नव वधू सत्यवती एवं अपने विनीत पुत्र ऋचीक की सेवा से गद्‌गद् हुए महर्षि ने प्रसन्न होकर कहा—मैं तुम्हारी श्रद्धा-सेवा से परम तुष्ट हूँ। इसलिए जो चाहो वर माँगो। सत्यवती ने अपने तथा अपनी माता के लिए तेजस्वी एवं ओजस्वी पुत्र होने की अभिलाषा श्वसुर के समक्ष व्यक्त की।

भृगु ने हर्षित होकर कहा—देवि! ऋतु स्नान के पश्चात् शुद्ध, स्वच्छ और स्वस्थ होने पर तुम और तुम्हारी माता (गाधि पत्नी) क्रमशः पीपल तथा गूलर के वृक्षों से आलिङ्गित होकर मेरे द्वारा बनाए गए पुत्रदायक चरु को खा लेना। ध्यान रहे तुम दोनों के लिए अलग-अलग चरु पिण्ड तैयार किये हैं। पुंसवन संस्कार के समय इन्हें सावधानी से ग्रहण करना।

भृगु तो योग्य पुत्रों की प्राप्ति की प्रक्रिया बतलाकर चले गये। सत्यवती ने अपनी माता से सब बातें बतलाई। माता ने विचार किया कि सम्भवतः अपनी पुत्रवधू को महर्षि भृगु ने अधिक योग्य पुत्र होने का उपाय बतलाया हो। उसने पुत्री सत्यवती को समझाकर विपरीत प्रक्रिया की। अर्थात् स्वयं पीपल का आलिङ्गन किया और सत्यवती वाला चरु भक्षण किया तथा पुत्री से गूलर का आलिङ्गन करवाया और अपने वाला चरु उसे खिलाया।

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती।
श्रेष्ठं मत्वा तयायच्छन्मात्रे मातुरदात् स्वयम्।। (श्रीमद्भागवत ९/१५-९)

कुछ काल के पश्चात भृगु पुनः ऋचीक के आश्रम में पधारे पुत्रवधू, सत्यवती के लक्षणों को जब महर्षि ने अन्तर्दृष्टि से देखा तो खिन्न मन से बोले—पुत्री! तुमने और तुम्हारी माता ने जो किया वह उचित नहीं था। मैंने तो ब्राह्मणोचित शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान एवं आस्तिकता के गुणों से ओतप्रोत पुत्र की प्राप्ति के लिए तुम्हारे निमित्त और शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध में पीठ न दिखाना, दान, ऐश्वर्य आदि गुणों से युक्त पुत्र के लिए तुम्हारी माता के लिए चरु तैयार किया था और पीपल एवं गूलर के वृक्ष से आलिङ्गन के अन्तर का भी यही कारण था। अब तुम्हारा पुत्र क्षत्रियोचित गुणों वाला और तुम्हारा भाई ब्राह्मणोचित गुणों वाला उत्पन्न होगा। इस बात की चर्चा ऋचीक से भी हुई। सत्यवती ने कम्पित वाणी में प्रार्थना की कि मेरा पौत्र भले ही क्षत्रियोचित

प्रकृति वाला हो जाए, किन्तु पुत्र तो शान्त, तपोनिष्ठ एवं ब्राह्मण के गुण, कर्म स्वभाव वाला ही होना चाहिए।

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः।
अथ तर्हि भवेत् पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत्।। (श्रीमद्भागवत ९/१५/११)

भृगु के आशीर्वाद तथा ऋचीक के तपोबल से ऐसा ही हुआ। सत्यवती ने जिस पुत्र को जन्म दिया वह जमदग्नि के नाम से विख्यात हुआ। वह परम शान्त, संयम परायण, तपस्वी वर्चस्वी, वेदविज्ञान विशेषज्ञ और साथ ही साथ यजुर्वेद में भी पारंगत था। शस्त्रास्त्र में निपुण जमदग्नि ब्राह्म प्रकृति का था।

गृहस्थ जीवन—अकृतव्रण ने ऋचीक पुत्र जमदग्नि के विषय में युधिष्ठिर को बतलाया कि उसके तप, त्याग, वैदुष्य की कीर्तिचन्द्रिका त्रिभुवन में व्याप्त हो गई। देवराज इन्द्र भी उसका आज्ञानुवर्ती हो गया। सभी ऋषि मुनि भी जमदग्नि का आदर करते थे। जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित (प्रसिद्ध नाम रेणु) से उसकी पुत्री रेणुका को स्व-पत्नी के रूप में प्रदान करने का अनुरोध किया। ब्रह्मवर्चस्वी जमदग्नि की प्रार्थना को राजा ने सहर्ष स्वीकार किया और अपनी सुशीला पुत्री रेणुका उसे विधिवत् प्रदान की। यथा समय जमदग्नि को रेणुका के गर्भ से पाँच पुत्रों की प्राप्ति हुई, जिनमें भगवान् परशुराम कनिष्ठ थे।



नारायणावतार

श्रीमन्नारायण के साक्षात् अवतार भगवान् परशुराम का जन्म वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया) को रात्रि के प्रथम प्रहर में हुआ था। उच्च वर्ग के छह ग्रहों से युक्त लग्न में (तुलालग्न में) इनका जन्म वाराणसी (उत्तर प्रदेश) जनपद के तुर्तीपार के निकट खैरागढ़ नामक स्थान में हुआ। जिसे भार्गवपुर के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० सीताराम चतुर्वेदी ने कालिदास ग्रंथावली (तृतीय संस्करण) अभिधान कोष के अन्तर्गत पृष्ठ १६० पर इस विषय की चर्चा की है।

स्कन्दपुराण के अनुसार—

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समयेहरिः।।
स्वोच्चवर्गग्रहैर्युक्तो मिथुने राहुसंस्थितौ।
रेणुकायास्तु गर्भादवतीर्णः स्वयं हरिः।।

अध्यात्मरामायण में भी परशुराम के अवतरण का संकेत प्राप्त होता है—

राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाताभूमेर्भरावहाः।
तान् हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः।।
(अध्यात्म, युद्धकाण्ड १०/५१)

जिस समय राक्षस क्षत्रियों के रूप में जन्म लेकर पृथ्वी के भारभूत (अपने अत्याचार और अनाचार के कारण) बने हुए थे उस समय श्रीमन्नारायण ने परशुराम के रूप में अवतरित होकर उन दुष्टों को कई बार युद्ध में मारा और पृथ्वी को जीतकर उसे (कश्यप) मुनि को दे दिया।



जन्म स्थान

परशुराम के जन्म स्थान के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। भारत के विशेषतः उत्तर भारत के अनेक स्थानों पर भृगुवंश के वर्चस्वी तेजस्वी महर्षियों के निवास होने की किंवदन्ती, दन्तकथाएँ तथा प्रतिमाओं से विराजित पावन स्थली होने के प्रमाण मिलते हैं। उत्तर प्रदेश के जनपद बुलन्दशहर के अन्तर्गत अनूपशहर से कर्णवास-नरवर-बिहारघाट तक के स्थान को भृगु स्थल के नाम से जाना जाता है। 'भृगु का आश्रम' यहाँ विद्यमान है।

वाराणसी जिले में तुर्तीपार के पास खैरागढ़ नामक स्थान को भार्गवपुर कहा जाता है। सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० सीताराम चतुर्वेदी ने कालिदास ग्रंथावली में इसी स्थान में परशुराम का जन्म माना है।

महर्षि जमदग्नि ने नर्मदा तट पर अवस्थित अपने आश्रम का परित्याग करके कुरुक्षेत्र भूमि के "जामनी" ग्राम के निकट अपना आश्रम बनाया। इसी धर्मक्षेत्र में उन्होंने घोर तप किया। जिसके फलस्वरूप यहीं परशुराम का जन्म हुआ।

कई विद्वानों ने महर्षि जमदग्नि का आश्रम यमुना के उद्‌गम स्थल यमुनोत्तरी से प्रवाह की ओर दक्षिणतट गंगनाणी (जनपद उत्तरकाशी) नामक स्थान के पारथान ग्राम में माना है। यहाँ जमदग्निरेणुका का मन्दिर विद्यमान है। मन्दिर में जमदग्नि की शिर-विहीन पाषाण प्रतिमा प्रतिष्ठित है। जो सहस्त्रार्जुन के द्वारा जमदग्नि के शिरश्छेदन के प्रतीक रूप में विद्यमान है। यहाँ यमुना के प्रवाह की ओर लगभग दस किलोमीटर दूर हैहयवंशी कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन का कोट (किला) माना जाता है। जिसके कुछ ध्वस्त अवशेष वहाँ उपलब्ध होते हैं। यह स्थान यमुना के बाएं तट पर बड़कोट के नाम से जाना जाता है। परशुराम का जन्म यहाँ होना भी सम्भावित है। क्योंकि यहाँ भार्गव परशुराम का पुरातन मन्दिर अवस्थित है। इस मन्दिर में एक बहुत भारी कुठार भी है, जो परशुरामका वही कुठार (परशु) माना जाता है जिससे उन्होंने उद्दण्ड क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया था।

उत्तरकाशी का यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही तीर्थस्थल के रूप में सुप्रतिष्ठित रहा है। महाकवि कालिदास ने "मेघदूत" में इसका स्पष्ट संकेत किया है। 'पूर्वमेघ' में वे लिखते हैं—

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्,
हंसद्वारं भृगुपतियशो वर्त्म यत्क्रौञ्च रन्ध्रम्।।

(मेघदूत पूर्व मेघ ६१)

अर्थात् हे मेघ! महान हिमालय के उन विशेष शृंगों (चोटियों) एवं उपतट अर्थात् उन चोटियों के मूल में भृगुपति परशुराम द्वारा निर्मित उस हंसमार्ग से अलकापुरी को प्रस्थान करना—जिसे क्रौञ्च छिद्र के नाम से भी पुकारा जाता है। भार्गव परशुराम ने जिसे अपने बाणों की नोकसे हिमालय पर्वत को छेदकर (काटकर) बनाया है इसीलिए वह सीधा न होकर तिरछा या टेढ़ा बना हुआ है।

उत्तरकाशी, जो शिव की वास्तविक स्थली है से भार्गव परशुराम का घनिष्ठ सम्पर्क होना सिद्ध होता है। परशुराम की जन्मस्थली इसी क्षेत्र को कई विद्वान् सिद्ध करते हैं। उनका तर्क है कि उत्तरकाशी जनपद में स्थित थान ग्राम के निकटवर्ती गंगनाणी चट्टी (यात्री विश्राम गृह) के पास नन्दगाँव नामक ग्राम के नीचे यमुना के बाँए तट पर मन्दिर के निकट से प्रवाहित होने वाली जलधारा यमुना का स्रोत न होकर भागीरथी स्रोत है, जिसे भृगकुलावतंस परशुराम ने स्व-पितृभक्ति के प्रमाण में उस पर्वत की तलहटी में बाण मारकर उत्तरकाशी भागीरथी तट तक सम्पृक्त किया था। तात्पर्य यह है कि परशुराम के बाण द्वारा किये गये उस छिद्र से (सुरंग से) भागीरथी का जल यमुना के बाएं तट पर गंगनाणी तक आता है। उसी जल से महर्षि जमदग्नि स्नान, पूजा उपासना एवं अर्घ्यदान आदि करते थे।

इस प्रकार की जनश्रुति उस क्षेत्र में प्रसिद्ध है कि पितृभक्त परशुराम प्रतिदिन प्रातःकाल उषावेला में अपने पिता जी के लिए शिवनगरी उत्तरकाशी से गंगा जल का कलश संध्यापूजा के निमित्त लाया करते थे। एक दिन उनके मन में विचार आया मेरे अतुल पराक्रम की यह निरर्थकता ही है कि यदि भागीरथी का जल यहीं उपलब्ध न हो सके। उन्होंने गंगनाणी में यमुना तट के स्तर पर बाण इतने जोर से मारा कि वह तीर पर्वत की लगभग एक किलोमीटर तलहटी को चीरता हुआ भागीरथी (गंगा) तट तक जा पहुँचा और उसी छिद्र से भागीरथी का जल गंगनाणी ग्राम में स्थित जमदग्नि के आश्रम तक यमुना के बाँए तट पर प्रवाहित होने लगा। इन सब का निष्कर्ष यह है कि कुछ विद्वान् इसी क्षेत्र को परशुराम का जन्म स्थान मानते हैं।

हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जनपद के अन्तर्गत रेणुका झील है। जहाँ वर्तमान में भव्य परशुराम मन्दिर, रेणुका मन्दिर आदि निर्मित हैं। प्राकृतिक सुषमा से ओतप्रोत यह स्थल दर्शनीय स्थलों में परिगणित किया जाता है। परशुराम का जन्म स्थल इसे भी कई विद्वान् बतलाते हैं। जमदग्नि का आश्रम भी यहाँ माना जाता है। चिरजीवी परशुराम कहीं भी परिभ्रमण करते हैं किन्तु कार्तिकी शुक्ला दशमी से पूर्णिमा तक अपनी माता के दशनार्थ यहाँ अवश्य पधारते हैं। इन छह दिनों में यहाँ हरियाणा सरकार तथा हिमाचल सरकार के प्रयास से भव्य मेले का आयोजन किया जाता है। ये पूरा ही क्षेत्र अपूर्व प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है। रेणुका स्थल की इस झील की आकृति नारी शरीराकृति के सदृश है। रेणुका घाटी के रूप में विख्यात इस क्षेत्र को परशुराम का जन्मस्थल माना जाता है।

नैसर्गिक सुषमा से सम्पन्न यह क्षेत्र देवभूमि के रूप में विख्यात है। यहाँ स्थान-स्थान पर देवमन्दिर है। गिरिगंगा के पावनतट से महर्षि जमदग्नि के तपस्थल 'तपे के टीले' के पास तक फैली तीन किलोमीटर लम्बी उपत्यका (वादी) श्री रेणुकातीर्थ के नाम से विख्यात है। मानवाकृति की झील के क्रिनारे शिवलिंग के आकार का शिवालय है, परिक्रमा में सहस्रधारा है। सदैव शान्त यह क्षेत्र वास्तव में स्वर्ग के नन्दन वन के समान है। झील के पूर्वी छोर से तनिक दूर दो ऊंचे पर्वत हैं, एक को तपे का टीला (जमदग्नि की तपोभूमि) और दूसरे को कामली का टीला (कपिल मुनि का आराधना स्थल) कहते हैं।

भगवती रेणुका के नाम पर इस क्षेत्र का, झील का नाम होगा और यहाँ रेणुका के मन्दिर में रेणुका मूर्ति की स्थापना प्रतिदिन पूजा अर्चना-आरती का होना यह सिद्ध करता है कि पराम्बा पार्वती की अंशभूता ही रेणुका माता थी। जमदग्नि शिवांश से सम्बन्ध

रखते हैं।

इस क्षेत्र में लोककथा के रूप में यह कथा भी लोकगीतों में गाई जाती है कि परशुराम ने यहाँ अवतार धारण करे 'मृगला' नाम की एक राजकुमारी को अपनी 'धर्म बहिन' बनाया था। उसकी भी वन्दना रेणुका के समान की जाती है। अपनी इस जन्मस्थली में परशुराम प्रतिवर्ष नियमपूर्वक पधारते हैं। सहस्त्रार्जुन एवं हैहयवंशी राजाओं के संहार के पश्चात् जब परशुराम विश्वकल्याणार्थ तप करने महेन्द्र पर्वत चले गये तब एक बार उनकी याद करके माता रेणुका अश्रुपातपूर्वक रोने लगी। उसी समय सर्वज्ञ प्रभु परशुराम प्रकट हो गये। माता के चरणारविन्द में सविनय प्रणाम करके उन्होंने वचन दिया कि वे वर्ष में एक बार (कार्तिक शुक्ला दशमी से पूर्णिमा पर्यन्त) माता के दर्शनार्थ आया करेंगे। रेणुका झील के निकटवर्ती ग्राम कटाहा तथा महाशू से पालकियों में भगवान् परशुराम की प्रतिमाएँ आती हैं, जिन्हें धर्मानुरागी श्रद्धालु तीर्थ यात्री पालकी न कहकर साक्षात् भगवान् जामदग्न्य परशुराम पधार रहे हैं—यही कहते हैं। सारा क्षेत्र 'भगवान् परशुराम की जय' 'रेणुका माई की जय' से गुञ्जित हो उठता है।

कुरुक्षेत्र के पावन स्थल से रेणुका तीर्थ तक तथा हरिद्वार में गंगा के पवित्र तट से शतद्रु (सतलुज नदी) के मैदानी भाग के तटवर्ती वृत्ताकार क्षेत्र को प्राचीन मान्यताओं के आधार पर पृथ्वी का केन्द्र माना जाता है। इसी वृत्त में सृष्टि की सर्वप्रथम रचना प्रारम्भ हुई। परशुराम के जन्मस्थान के अनेक स्थलों की सम्भावित, प्रतिपादित एवं किंवदन्तियों में प्रचलित सूची में रेणुका स्थल प्राथमिक कोटि में है।

गुजरात प्रदेश के भृगुकच्छ (भडौंच) को भी एक दो अन्वेषकों ने परशुराम की जन्मस्थली सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु इस सन्दर्भ में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि भृगु ने अपने यात्रा प्रसंग में इस क्षेत्र की भी यात्रा की होगी, भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता वे महर्षि परिभ्रमण करते ही रहते थे।

इसी भाँति उड़ीसा के भार्गवों का यह कथन कि परशुराम ने समुद्र तट पर अवस्थित महेन्द्र पर्वत पर जन्म लिया और यहीं तपस्या भी की, कल्पना मात्र प्रतीत होता है।

वास्तव में, यह लोकपरम्परा का मनोवैज्ञानिक पक्ष रहा है कि महापुरुषों, विद्वानों एवं मनीषियों को अपने क्षेत्र की ओर खींचकर उन्हें वहाँ उत्पन्न हुआ बतलाना, उस स्थान से सम्बद्ध बतलाना अपनी प्रतिष्ठा का संवर्धक माना जाता है। परशुराम के सम्बन्ध में तो यह स्थिति सर्वाधिक रही है। वे ब्राह्म और क्षात्र उभयविध वर्चस्व के अनुपम उदाहरण रहे हैं अतः यह स्वाभाविक है।

महर्षि जमदग्नि के रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम पांच पुत्र थे। चरु के प्रभाव से परशुराम ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियोचित व्यवहार करते थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में वेद-वेदांग का इन्हें पर्याप्त ज्ञान था। शस्त्र सञ्चालन में ये बेजोड़ थे।

महर्षि भृगु द्वारा संस्थापित 'भार्गव विश्वविद्यालय' की ख्याति शास्त्रों के अध्ययन के क्षेत्र में तो थी ही, शस्त्रास्त्र के शिक्षण में इसका विशेष स्थान था। उस काल में प्रयाग का भारद्वाज विश्वविद्यालय, अयोध्या का वशिष्ठ विश्वविद्यालय पूर्व में कपिल विश्वविद्यालय तथा मिथिला के निकट विश्वामित्र विश्वविद्यालय की कीर्ति विश्वविदित थी, किन्तु शस्त्रास्त्र के निष्णात महर्षि जमदग्नि के पास दूर-दूर के छात्र विद्याग्रहण करने आते थे। समय-समय पर विशिष्ट विषयों के मूर्धन्य विद्वान् यहाँ प्रवचनार्थ पधारते थे।

राम से परशुराम

परशुराम ने स्वयं भी तत्तत् विशेषज्ञों से शस्त्र तथा शास्त्र का अध्ययन किया था। परशु चलाने की शिक्षा आशुतोष भगवान् शंकर की सन्निधि में उपलब्ध की थी। वास्तव में इनका जन्मना नाम तो 'राम' ही था, 'परशु' चालन की विशेष योग्यता और गुरुदेव शंकर के शुभाशीर्वाद के फलस्वरूप ही 'परशुराम' कहलाने लगे।

एक बार विचित्र संयोग बना। शंकर-पार्वती 'भार्गव विश्वविद्यालय' में पधारे। उनका स्वागत अभिनन्दन हुआ। कुलाधिपति जमदग्नि ने स्वयं अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया। प्रमुदित शंकर ने 'परशु' प्रशिक्षित छात्रों की प्रगति के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की। जमदग्नि ने उन सभी छात्रों की प्रगति के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की। जमदग्नि ने उन सभी छात्रों को एकत्रित होने की आज्ञा दी जो परशु चालन की कला का विशेष अध्ययन कर चुके थे अथवा कर रहे थे। क्रीड़ा प्रदर्शन की दृष्टि से दो-दो की जोड़ी बनाई गई। सब क्रीड़क भगवान् शंकर, मातेश्वरी पार्वती, कुलाधिपति जमदग्नि तथा माता रेणुका के चरणों में प्रणाम करके परशुचालन का हस्तकौशल दिखाने लगे। जमदग्नि तनय राम ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को क्षणभर में परास्त कर दिया। तब आचार्य ने दो प्रतिद्वन्द्वी एक साथ भेजे, राम ने उन्हें भी परास्त कर दिया। इस क्रम से आचार्य बारम्बार दुगने प्रतिद्वन्द्वी भेजते और राम अकेला ही सब को परास्त कर देता था। उसकी तीव्रगति, विद्युत वेग से बचाव और कठोर प्रहार से प्रतिद्वन्द्वियों के परशु हाथ से छूट जाते थे अथवा टूट जाते थे।

भगवान् शंकर अपने शिष्य की प्रवीणता पर मुग्ध थे। वे बालक राम की परशु विद्या का परीक्षण करने के लिए स्वयं परशु लेकर मैदान में उतर आए। चारों ओर स्तब्धता व्याप्त थी। सभी विद्यार्थी चकित भाव से दाँतों तले अँगुली दबाए भूमि पर बैठकर इस द्वन्द्व युद्ध को देखने लगे। कुलाधिपति जमदग्नि हर्ष, चिन्ता, विस्मय के झूले में झूल रहे थे। विनीतभाव से राम ने गुरुवर शंकर के पावन चरणारविन्द में प्रणाम किया। दृढ़ता से परशु सम्भालते हुए निवेदन किया "गुरुदेव! आपसे कृपापूर्वक प्राप्त की गई परशु चालन विद्या से यह चरण सेवक प्रहार करने में तो असमर्थ रहेगा किन्तु आप के प्रहारों को झेलने का प्रयास अवश्यमेव करेगा।" यह कहते हुए राम ने हाथ में पकड़े हुए बड़े परशु को एक ओर रख दिया और छोटा परशु दक्षिणहस्त में उठा लिया वाम हस्त में गेंडे के चर्म से निर्मित ढाल पकड़ ली। शंकर प्रहार करने लगे और राम कभी बैठकर, कभी कूदकर कभी आगे पीछे हटकर कभी बार-बार ढाल आगे करके प्रत्येक प्रहार को बचाने लगे। अकस्मात् शंकर का रुद्र रूप प्रकट हो गया और वे रौद्र रस के साक्षात् रूप बनकर क्रुद्धभाव से अपने विकट परशु का भीषण प्रहार परशुराम पर करने लगे। राम सावधान थे। उन्होंने भी उतने ही वेग से अपना लघु आकार का परशु शंकर के परशु दण्ड पर चलाया और स्वयं तीव्र वेग से ढाल की ओट में हो गये। शंकर का परशु टूटकर निकट के वृक्ष से टकराया उससे वृक्ष टूटकर गिर गया। भगवान् शंकर के हाथ में परशु का आधा खण्ड रह गया।

"वाह! राम! वाह परशुराम" तभी भगवती पार्वती ने करतलध्वनि के साथ बालक राम का हौंसला बढ़ाया, प्रकृतिस्थ होकर शंकर ने अपने प्रिय शिष्य को गले लगाया। पार्वती

ने हर्ष से बालक को आशीर्वाद दिया और शंकर को "खण्ड परशु" कह कर सम्बोधित किया। (तब से शंकर का एक नाम 'खण्डपरशु' भी विख्यात हो गया।) राम ने विनम्रता के साथ शंकर-पार्वती, पूज्य पिता कुलाधिपति जमदग्नि और माता रेणुका के पदारविन्द में प्रणाम किया। आशुतोष शंकर कैलाश चले गये। वे जाते जाते "परशुराम" नया नाम देते गये।

भृगु तथा उनके वंशज आत्मज पुत्र प्रपौत्र सभी तेजस्वी, बलशाली, योद्धा और किसी की अनुचित बात को स्वीकार करने में स्वयं को असमर्थ पाते थे। अन्याय को सहन न करना न्याय के लिए संघर्ष करना उनका स्वभाव था।

महर्षि जमदग्नि परम गोभक्त, अतिथि परायण, अग्निहोत्री तथा मर्यादाओं के प्रति दृढ़ निष्ठावान् थे। वे सिद्धांत और व्यवहार में शास्त्र निष्ठ थे। वे मनु के इस कथन को गृहस्थ के लिए आवश्यक मानते थे–

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति।।

वे वेद की आज्ञा को शिरोधार्य करते थे "**अतिथिदेवो भव।**" उनकी धारणा थी "**सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।**" अतिथि की सेवा करना गृहस्थ का परम धर्म है। अतिथि के शरीर में देवता वास करते हैं। यदि किसी गृहस्थ के यहाँ से कोई अतिथि निराश होकर लौटता है तो वह अपने पाप उसे देकर उसके पुण्य लेकर जाता है।

एक दिन प्रबल भावी के संयोग से विचित्र घटना घटित हुई। सायं कालीन सन्ध्या वन्दन के उपरान्त महर्षि जमदग्नि जप में संलग्न थे। उनके पाँचों पुत्र फल-फूल लेने वन में चले गए थे। रेणुका दैनिक नियमानुसार यज्ञ सम्बन्धी सामग्री जुटाने और एकवस्त्री होकर जल लेने के लिए नदी पर गई थी। जप के उपरान्त ऋषि प्रतीक्षारत थे। सायंकालीन सन्ध्या "**उत्तमा सूर्य सहिता।**" सूर्य के रहते हुए उत्तम मानी जाती है। सन्ध्यापूर्ण हो गई, जप भी हो गया, सूर्य अस्ताचल को चले गए, अन्धकार बढ़ने लगा और यज्ञशाला में बैठे जमदग्नि की चिन्ता भी बढ़ने लगी। क्या हुआ, इतना विलम्ब तो कभी नहीं हुआ। क्या कारण है? अकल्पित आशंका से जमदग्नि उद्विग्न हो उठे। यज्ञशाला से कुटिया में गए। वर्षों से रखे अपने धनुष को उठाया। यह शिव का द्वितीय धनुष था जो उनसे विष्णु को और विष्णु से महर्षि भृगु को प्राप्त हुआ। अब क्रमागत रूप से महर्षि जमदग्नि के पास था।

रेणुका जल लेने गई थी, जल का पात्र मिट्टी से शुद्ध कर रही थी। अचानक चौंक उठी। गन्धर्व चित्ररथ का जलयान रुका। अपनी प्रणयिनियों के साथ वह असंयतभाव से जलक्रीड़ा करने लगा। झुरमुट में बैठी रेणुका विचार करने लगी, ये जल विहार करके जाएँ तो मैं पवित्र जल का पात्र भरकर ले जाऊँ। अर्धनग्न गन्धर्वियाँ और चित्ररथ अपने में मग्न थे, उनकी भावभंगिमा, उन्मुक्तता दूर खड़े व्यक्ति को भी मदोन्मत्त बना देती थी। काम का प्रभाव वातावरण पर छा रहा था।

चौंक उठी रेणुका। समय का ध्यान आया। जलपात्र भरा और तेज चरणों से कुटिया

की ओर लौट चली। इधर से उद्विग्न जमदग्नि उसे ढूँढ़ने आ रहे थे। दोनों की बीच मार्ग में भेंट हुई। ऋषि मौन। दोनों वापिस लौट चले। कुटिया में आये। थोड़ी देर बाद मौन टूटा "देवि! रेणुका! आज बहुत विलम्ब हो गया। क्या कोई हिंसक जीव सामने आ गया था? या कोई अन्य बाधा उपस्थित हो गई थी?" रेणुका ने संयत वाणी में चित्ररथ गन्धर्व वाली घटना सुनाई। सुनाते-सुनाते वह भाव विह्वल हो गई मानो जल विहार का दृश्य चित्रपट की भाँति उसके नेत्रों के समक्ष घूम गया हो। न जाने किस भावावेश में वह कह उठी "आर्य! मैं विचार कर रही थी यदि हमारे पास भी चित्ररथ जैसा जलयान हो और हम भी..." "क्या कह रही है कुलटा!" बीच में ही चीख उठे जमदग्नि "ऋषि पत्नी होकर आर्य मर्यादा का, आर्यों के आचरण का उल्लंघन कर रही है! परपुरुष को जल विहार करते देखा तूने!! और स्वयं वैसा जलयान स्वय वैसा जलविहार..." क्रोध से फुँकारे ऋषि। वे अग्नि के अंगार बन गये।

वे आत्म सम्भाषण कर रहे थे "मैं भृगु का वंशज! मैं ब्राह्मण। मैं जगद्गुरु!!! मेरी पत्नी के ये विचार!!"

ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छाय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च।।

ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र सांसारिककाम के लिए नहीं है। कठोर तप के लिए है। साधना के लिए है। दीपक की भाँति स्वयं जलते रहकर सब को प्रकाश देने के लिए है।

जमदग्नि का बड़ा पुत्र रुमण्वान् आश्रम में आया। क्रोधाविष्ट ऋषि ने आदेश दिया "जाओ, कुटी में जाकर माता का मस्तक काट डालो।" मौन असमर्थता व्यक्त करके वह अचेत पड़ी माता के पास जाकर बैठ गया। उसके पश्चात् सुषेण, वसु और विश्वावसु क्रमशः आये, वे भी मौन भाव से पिता की—कुलाधिपति जमदग्नि की आज्ञा का उल्लंघन करके रूमण्वान् की भाँति माता के पास स्थित हो गये। ऋषि ने शाप देकर सबको अचेत कर दिया।

आश्रमवासी स्तब्ध! वातावरण में सन्नाटा!! सब की मुखमुद्रा "किं भविष्यति।" क्या होगा से आक्रान्त। परशुराम के आने तक सम्भवतः कुलाधिपति का क्रोध शान्त हो जाए!! सबके नेत्र अश्रूपूरित। सब मौन।



पितृभक्ति

अकस्मात् हलचल हुई। धीमे-धीमे स्वर "परशुराम आ गये, परशुराम आ गये" वातावरण में गुंजित हुए। परशुराम ने भृगुपति जमदग्नि को प्रणाम किया। वातावरण की गम्भीरता पर उनका ध्यान गया। चारों ओर दृष्टि डाली। पिता को देखा। जमदग्नि की सन्तुलित वाणी परशुराम को सुनाई दी "पुत्र राम! तुम्हारी माता ने आज मर्यादा भंग की है। इसके कारण अग्निहोत्र, देवपूजन, अतिथि सेवा सब का समय नष्ट हो गया"–

अग्निहोत्रस्य कालोऽयं व्यतीतश्चाभवच्छुभः।
देवतातिथिपूजा मे बभौ मोघा न संशयः।।
देवतातिथिदीनार्त तृप्तिकालोऽनया सुत।
त्यक्तस्मस्माच्च हन्तव्या नूनं नास्त्यत्र संशयः।।

(स्कन्दपुराण . . .)

"यह कुलटा है राम! इसका मस्तक काट डालो। तुम मेरे पुत्र हो यदि।" पुत्र के लिए पिता की आज्ञा का पालन करना और ऐसी आज्ञा का पालन करना तीक्ष्ण तलवार की धार पर चलना है। परशुराम मेघगम्भीर स्वर में बोले "पिताजी! यदि माता कुलटा है तो उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं है। अन्यायी माँ की हत्या इसलिए करूँगा कि आश्रम की कोई नारी कभी कुटिल आचरण का विचार भी मन में न ला सके।" परशु उठाया, हाथ में चमका, परशुराम कुटिया में गए क्षण भर में ही माता का मस्तक काट डाला। उसी परशु से अपना भी शिरच्छेद करने को उद्यत परशुराम को दौड़कर पकड़ा जमदग्नि ने। अग्नि से धधकते जमदग्नि शान्त भाव से बोले। पुत्र! जो चाहो वर माँगो मैं प्रसन्न हूँ एक वरदान मैं स्वयं देता हूँ–

स्वच्छन्दमरणं पुत्र तुष्टे त्वं मयि लप्स्य से।

तुम चिरंजीवी होगे। परशुराम ने कहा आप यदि प्रसन्न हैं, मेरी प्रार्थना है–

स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै।
पापेन तेन चास्पर्शं भ्रातृणां प्रकृतिन्तथा।।
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे दीर्घमायुंश्च भारत।
ददौच सर्वान् कामांस्ताञ्जमदग्निर्महातपाः।।

(महाभारत वन० ११६/१६१/७१८)

मेरी माता पुनः जीवित हो जाए। उसे मेरे द्वारा किए गए वध की स्मृति न रहे। मुझे मातृवध का पाप स्पर्श न करे, मेरे चारों भाई पूर्व की स्थिति में आ जायें और युद्ध में कोई मुझे न जीत सके। ऋषि ने सभी वर प्रसन्नता से प्रदान किये।

वास्तव में शास्त्र की मर्यादा के पालन और प्रजा में न्याय व्यवस्था की स्थापना के लिए महापुरुषों को कटु निर्णय भी लेने पड़ते हैं। प्रजा की प्रसन्नता के लिये भगवान् राम

को अग्निपरीक्षिता जानकी का परित्याग करना पड़ा था। राम की घोषणा थी–

स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।

प्रजा के रञ्जन के लिए यदि मुझे स्नेह, दया, सुख या जानकी को भी छोड़ना पड़े तो मुझे कोई पीड़ा नहीं होगी।

भगवान् परशुराम का यह कठोर कार्य इसी कोटि में आता है ऐसा दुष्कर कार्य करने के लिए उन्हें कितनी मानसिक यातना से जूझना पड़ा होगा! भरत ने माता कैकेयी को कितने अपमान जनक शब्द कहे–यह उनकी राम के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति थी। तर्क, भावना, शास्त्रपक्ष एवं परम्परा पालन में कई ऐसी स्थितियाँ आती है जो लोक समर्थित चाहे न हों परन्तु सिद्धान्त पालन के लिए आवश्यक हो जाती हैं। धर्म संस्थापना के लिए अवतरित साक्षात् नारायणरूप भगवान् श्री परशुराम, श्री राम और श्री कृष्ण के लोकोत्तर चरित्रों को सामान्य लौकिक बुद्धि वाले व्यक्ति कहाँ समझ सकते हैं! परशुराम द्वारा कृत मातृवध, राम द्वारा शम्बूक का वध, सीता परित्याग और शूर्पणखा का अपनी उपस्थिति में नासिका कर्तन, श्रीकृष्ण द्वारा रासलीला का आयोजन, चीरहरण लीला तथा विचित्र परिस्थितियों में भीष्म का आहत करना, द्रोणाचार्य एवं कर्ण का वध करवाना आदि प्रसंग आज के तथाकथित बुद्धिवादी सामान्य चिन्तन वाले व्यक्ति कहाँ समझ सकते हैं। इनकी पृष्ठभूमि में शास्त्र की मर्यादा, सिद्धांत संरक्षण और आदर्श की परिपालना ही मुख्य कही जा सकती है।

देवराज इन्द्र की प्रसन्नता के लिए महर्षि जमदग्नि ने गंगा के तट पर अवस्थित होकर हजारों वर्ष पर्यन्त तप किया। इन्द्र ने संतुष्ट होकर दर्शन दिये और महर्षि की प्रार्थना पर सर्वविध कामनाओं की पूर्ति करने में सक्षम कामधेनु गौ उनको प्रदान की। वे मुदितमन से आश्रम लौट आये। ब्रह्मचिन्तन में सतत संलग्न कुलाधिपति जमदग्नि अध्यापन, जप, तप, ध्यान में ही अपना समय यापन करते थे।

एक बार हैहयवंशी कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीय आखेट के लिए उसी वन में आया, जहाँ महर्षि जमदग्नि का आश्रम था। मदोन्मत्त अर्जुन को अपनी भुजाओं का बहुत गर्व था। नारायण के अंशभूत भगवान् दत्तात्रेय की आराधना करके उसने हजार भुजाएँ, एक स्वर्ण विमान और अमोघ शक्ति वरदान में प्राप्त की थी। नीति वाक्य के अनुसार सज्जन तथा दुर्जन में कुछ बातों का मूलभूत अन्तर होता है–

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत् दानाय भोगाय च रक्षणाय।।

दुर्जन व्यक्ति का ज्ञान विवाद के लिए, धन अभिमान के लिए और शक्ति दूसरों को पीड़ित करने के लिए होती है जबकि सज्जन का ज्ञान दान के लिए धन परोपकार के लिए और शक्ति पीड़ितों की रक्षा के लिए होती है। भगवत्कृपा से उपलब्ध सभी वरदानों का कार्तवीर्य ने दुरुपयोग किया और नारायणावतार भगवान् परशुराम ने सदुपयोग किया इस बात के अनेक उदाहरण ब्रह्मवैवर्तपुराण, पद्मपुराण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में प्राप्त होते हैं।

भावी की प्रबलता

शची के साथ चित्ररथ वन में विहार करते देवराज इन्द्र का कार्तवीर्य अर्जुन ने अपमानजनक तिरस्कार किया। उसके अत्याचारों से प्रजा संत्रस्त थी। उसका आश्रय पाकर दुष्ट क्षत्रियों का दुःसाहस बढ़ता चला गया और वे सन्त-महात्मा, ऋषि-मुनियों के धार्मिक कृत्यों में भी बाधा डालने लगे। दिन-प्रतिदिन के अपमान से विक्षुब्ध देवता एकत्रित होकर क्षीरसागर में शेषशैय्या पर विराजमान श्रीमन्नारायण की शरण में गये। देवताओं की व्यथा-कथा से द्रवित होकर अकारण करुण करुणावरुणालय प्रभु ने उन्हें आश्वस्त किया कि मैं शीघ्र ही परशुराम के रूप में अवतरित होकर सहस्रार्जुन का तथा अन्य भी दुष्ट क्षत्रियों का वध करूँगा।

'कल्याण' मत्स्यपुराणांक (अध्याय ४३ पृ० १५०) में भी एक घटना इस सन्दर्भ को पुष्ट करती प्रतीत होती है। कार्तवीर्यार्जुन ने अग्नि को विवश करके अपने दुर्दण्ड भुज दण्डों से महर्षि आपु (मैत्रावरुणि वसिष्ठ) के सुरम्य आश्रम को जलाकर भस्म कर दिया। रोषाविष्ट महर्षि आपव (वसिष्ठ) ने शाप दिया "अर्जुन! तुमने मदोन्मत्त होकर अपनी जिन हजार भुजाओं से मेरे मनोरम आश्रम सहित इस वन को भस्म किया है, शीघ्र ही इन भुजाओं को भगवान् परशुराम अवतरित होकर काट डालेंगे।"

इन शापों के उपरान्त भी उसकी बुद्धि में परिवर्तन न हुआ। वास्तव में भवितव्यता प्रबल होती है—

यदभावि न तद् भावि भावि चेन्न तदन्यथा।

जो होना है अवश्य होना है और जो नहीं होना वह नहीं हो सकता।

कार्तवीर्यार्जुन दिनभर अपने अमात्य-अनुचरों आदि के सहित वन में आखेट करता घूमता रहा। आरण्यक पशुओं के पीछे भागते-भागते वह थककर चूर हो गया। सेना भी निढाल हो गई। जमदग्नि के आश्रम के निकट ही शिविर (पड़ाव) डाल दिया गया। बिना कुछ खाये-पीये पूरी रात्रि उसने यों ही व्यतीत की। प्रातःकाल स्नान ध्यान से निवृत्त होकर वह भक्तिभावपूर्वक दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त मन्त्र का श्रद्धापूर्वक जाप करने लगा। आश्रम के निकट आये अतिथियों का परिचय प्राप्त करने और उनकी यथोचित सेवा की भावना से जमदग्नि वहाँ आये—

मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्।
प्रीत्या सम्भाषयामास पप्रच्छ कुशलं मुनिः।

(ब्रह्मवैवर्त गणपति खण्ड २४/९)

मुनि ने वहां महाराज सहस्रार्जुन को देखा, भूख प्यास के कारण उसे ओष्ठ, तालु कण्ठ सब सूख गये थे। करुणार्द्र जमदग्नि ने प्रेमपूर्वक राजा का कुशल समाचार पूछा और सेना सहित भोजन का निमन्त्रण भी विनम्रतापूर्वक दिया। राजा ने चकितभाव से मौन स्वीकृति प्रदान की। जमदग्नि व्यवस्था के लिए वापिस आश्रम में लौटे। अर्जुन ने विचार किया ये कुटिया में रहने वाला ब्राह्मण मेरी और इतनी विशाल सेना की क्या व्यवस्था कर पायेगा!

चिन्तित से जमदग्नि ने आश्रम में आकर माता कामधेनु के सामने सारी बात बतलाई—

उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते।
जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मया को नृपो मुने।।
राजभोजन योग्यार्हं यद्यद् द्रव्यं प्रयाचसे।
सर्वं तुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।। (वही २४/१३-१४)

भगवती कामधेनु चिन्तित और भयभीत मुनि से कहने लगी—हे मुनिवर! आप मेरे रहते हुए निर्भय रहिये। ये राजा और उसकी सेना क्या है! आप सारे संसार को भोजन करवाने में समर्थ हैं। राजाओं के भोजन योग्य जिस भी वस्तु को आप चाहेंगे मैं सब प्रदान करूँगी। त्रैलोक्य में भी दुर्लभ पदार्थ स्वर्ण के पात्रों में रखकर कामधेनु ने देने प्रारम्भ किये। अगणित स्वर्ण पात्रों में भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य चारों प्रकार के छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन, फल पक्वान्न दुग्ध, दधि आदि राज भोगों से युक्त पदार्थ प्राप्त करके सहस्रार्जुन विस्मित रह गया। उसने अपने मन्त्री से कहा—

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च।
ममासाध्यानि सहसा क्वागतान्यवलोकय।। (वही २४/२३)

मन्त्रिवर! इस वनवासी आरण्यक जमदग्नि को ये अश्रुतपूर्व अद्भुत भोज्य पदार्थ कहाँ से कैसे प्राप्त हुए हैं! ये तो आज तक मुझे अप्राप्य रहे हैं। आप पता कीजिए इनका क्या स्रोत है?

मन्त्री, महर्षि जमदग्नि के आश्रम में गया। विनम्रतापूर्वक चरणों में प्रणाम किया। मन्द-मन्द मुसकाते हुए ऋषि ने पूछा—'कहिए, क्या अपेक्षित है? क्या सेवा करूँ?' मन्त्री ने मधु मिश्रित स्वर में निवेदन किया—'आपने महाराजा का जो स्वागत सत्कार किया उससे वे अभिभूत हैं। वे हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। भोजन के उपरान्त उन्हें ताम्बूल भक्षण की इच्छा हुई है यदि. . .' 'तो इतना संकोच क्यों अनुभव कर रहे हैं आप, अभी लाता हूँ' ये कहते हुए जमदग्नि शीघ्रता से वहाँ पहुँचे जहाँ एक कुटिया में कामधेनु बन्धी थी, और करबद्ध प्रणाम करते हुए याचना की 'मातेश्वरि! अतिथिसत्कार से परम सन्तुष्ट महाराज ने ताम्बूल (पान) मँगवाया है।' धेनु ने ग्रीवा हिलाते हुए तत्काल धीमें से हुँकार ध्वनि की और स्वर्ण की तश्तरी में सोने का बर्क लगा लवंग से संयुत पान का बीड़ा उपस्थित था। छुपकर पीछे आये मन्त्री ने यह सब देखा और जल्दी से अपने स्थान पर आकर बैठ गया—

ताम्बूलं प्रददौ पूर्णं कर्पूरादि सुवासितम्।
नृपयोग्यं कौतुकञ्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम्।। (वही २४/२०)

जमदग्नि ने कपूर आदि से सुगंधित ताम्बूल लाकर मन्त्री को दिया साथ ही राजा के धारण करने योग्य विस्मयवर्द्धक वस्त्रभूषण भी प्रदान किये।

मन्त्री ने पान महाराज को भेंट करते हुए चकित होकर कहा "महाराज!

आश्चर्यजनक बात है! ऋषि के आश्रम में एकान्त कुटिया में बहुत दिव्य आकृतिवाली एक सुन्दर गौ खड़ी है। ऋषि जमदग्नि हाथ जोड़कर जो भी याचना करते हैं गौ की 'हुँकार' ध्वनि के साथ वह वस्तु उपस्थित हो जाती है।"

यह सुनते ही विस्मयाविष्ट सहस्त्रार्जुन जमदग्नि के पास आया और नाटकीय विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए उनसे प्रार्थना की "हे मुनिश्रेष्ठ! आप मुझे भिक्षा में ये कामधेनु दे दीजिए, आप सदृश महात्मा तो भृकुटि के संकेत मात्र से अगणित कामधेनु की सृष्टि कर सकते हैं।"

जमदग्नि ने बहुत समझाया "राजन्! यह गौ तो मैंने इन्द्र की कृपा से गो लोक में भगवान् कृष्ण से प्राप्त की है। यज्ञ यागादि में इससे हमें सुविधा रहती है। पञ्चगव्य सुलभ रहता है, अतिथि सेवा भी इसकी कृपा से अनुकूल हो जाती है। आप कृपा करकेअपने घर पधारिये। आप तो सर्वसाधन सम्पन्न हैं। ये गौ तो ऋषि आश्रम में ही रहेगी।" यह उत्तर सुनते ही सहस्त्रार्जुन क्रोध से लाल हो गया। अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि बलपूर्वक कामधेनु को ले आओ।

गत्वा सैन्य सकाशं स कोप प्रस्फुरिताधरः।
किङ्करान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात्।। (वही २४/५०)

सहस्त्रार्जुन की सेना को आता देखकर जमदग्नि दौड़कर गौ के पास गये और रोते हुए सारी घटना उसे बतलाई। कामधेनु ने कहा कि इन्द्र, श्रीकृष्ण या आप यदि स्वेच्छा से मुझे किसी को भी प्रदान करेंगे तो मैं उसके साथ चली जाऊँगी। यदि आप नहीं देना चाहेंगे तो मुझे कोई नहीं ले जा सकता। आप रोइये मत।

सहस्त्रार्जुन ने अपने सैनिकों से यह सुनते ही दूत भेजकर अपने राज्य से चतुरंगिणी सेना को बुला भेजा। जमदग्नि बारम्बार उसे समझाते रहे परन्तु वह एक ही बात दोहरा रहा था—

युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किं वा धेनुञ्च वाञ्छिताम्। (वही २५/२)

विवश होकर जमदग्नि को युद्ध में प्रवृत्त होना पड़ा। कामधेनु द्वारा प्रदत्त दैवी सेना को साथ लेकर वे सहस्त्रार्जुन की चतुरंगिणी सेना के आक्रमण का प्रतिरोध करने लगे। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया, किन्तु थोड़ी देर बाद ही ब्रह्मा ने आकर दोनों को युद्ध से विरत किया। समझाया। मुनि— जमदग्नि तथा सहस्त्रार्जुन ने ब्रह्मा के चरणों में प्रणाम करते हुए उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। मुनि आश्रम में लौट आये और राजा अपने नगर वापिस आ गया।

कुछ समय के उपरान्त सहस्त्रार्जुन विशाल सेना लेकर पुनः जमदग्नि के आश्रम में आया। सेना ने आश्रम को चारों ओर से घेर लिया। जिस समय ये सब हो रहा था, जमदग्नि ध्यान मग्न थे। राजा ने सैनिकों को आज्ञा दी कि कामधेनु को बलपूर्वक पकड़कर ले चलो। उसी समय जमदग्नि उठ खड़े हुए। वे अपने शस्त्रास्त्र उठा पाते इससे पूर्व ही सहस्त्रार्जुन ने दत्त भगवान् द्वारा प्रदत्त अमोघ शक्ति का प्रहार ऋषि पर किया—

विदार्योरो मुनेः शक्तिर्जगाम हरि सन्निधिम्। (वही २७/२९)

जमदग्नि के वक्षस्थल को विदीर्ण करके शक्ति भगवान् के पास चली गई। मुनि ने तत्क्षण प्राणों का परित्याग कर दिया। कामधेनु रोने लग गई—

युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः।
हे तात तातेत्युच्चार्य गोलोकं सा जगाम ह।। (वही २७/३१)

मुनि के मृत शरीर को देखकर "हे तात हे तात!" कहकर तारस्वर से विलाप करती सुरधेनु गोलोक को चली गई। गौ के अश्रुबिन्दुओं से रत्न की भाँति समुज्वल बिन्दु सरोवर बन गया।

सहस्रार्जुन गौ के न मिलने से निराश और ब्रह्महत्या के पाप से भयभीत अपने नगर को लौट गया। वह लौटते समय रेणुका को बलात् अपने साथ ले जाने लगा।



परशुराम की प्रतिज्ञा

अपने प्राणनाथ जमदग्नि की मृत्यु का समाचार मिलते ही पतिव्रता देवी रेणुका कुटिया से बाहर आ गई और रक्त से लिप्त उनके शरीर को देखते ही मूर्छित होकर भूमि पर गिर गई। होश में आते ही वह बारम्बार वक्षस्थल का ताडन करती हुई अपने पुत्र राम को पुकारने लगी—

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुका सती।
मुनिं वक्षसि संस्थाप्य क्षणं मूर्छामवाप सा।।
तदा सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता।
एहि वत्स भृगो राम राम रामेत्युवाच ह।।

(वही २७/३६-३७)

परशुराम उस समय पुष्कर क्षेत्र में थे। अन्तश्चेतनात्मक योग के बल से वे मन से भी तीव्रगति के साथ माता के पास पहुँच गये। वहाँ का दृश्य देखकर वे विह्वल हो गये—

दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्तं जननीं सतीम्।
आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा।।

(वही २७/३९)

रक्त से लथ-पथ पिता के मृत शरीर को और वक्षस्थल का ताडन करती विलापरत माता को देखकर राम शोकग्रस्त हो गये। पिता की मृत्यु का कारण एवं कामधेनु के दुःखित होकर चले जाने के समाचार से उनका रोष बढ़ता जा रहा था। वे भावाविष्ट होकर बोले—"माता! आपने अपनी छाती को इक्कीस बार पीटा है, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दुष्ट, मर्यादाविहीन अत्याचारी क्षत्रियों से इस पृथ्वी को इक्कीस बार विहीन कर डालूँगा। मैं अपने पितरों का तर्पण कार्तवीर्य जैसे दुष्टों के रक्त से करूँगा।"

माता रेणुका ने पुत्र को समझाने का बहुत प्रयास किया कि "हे पुत्र! सुखपूर्वक अपने आश्रम में रहो, तपस्या करो। युद्ध करना उचित नहीं है। शान्तभाव से अपने पिता के और्ध्व दैहिक संस्कार सम्पादित करो।"

परशुराम का अवतार जिस उद्देश्य से हुआ था उसका स्पष्ट संकेत उनके उत्तर में प्राप्त होता है। उन्होंने धीर गम्भीर वाणी में कहा—"हे माता! यदि समाज में आततायी को दण्डित नहीं किया जायेगा तो अत्याचार, अनाचार बढ़ेंगे। निरीह निरपराध प्रजाजनों के, सामान्य नागरिकों के घरों में आग लगाने वाला, जीवित मनुष्यों को जला देने वाला, किसी को विष देकर मारने वाला, शस्त्रास्त्र से अकारण आक्रमण करने वाला भूमि को हड़पने वाला धन को चुराने वाला स्त्रियों बालकों का अपहरण करने वाला पिता, भाई बन्धु को मारने वाला, निरन्तर निन्दा करने वाला और बिना कारण के कटुवचन बोलने वाला इन ग्यारह प्रकार के अपराध करने वाले आततायी को मार देना चाहिए।"

परशुराम के आने का वही काल होता है जब सज्जन पीड़ित और दुर्जन अन्याय

अत्याचार रत होते हैं। अनधिकार चेष्टा, शक्ति का विद्रूप प्रदर्शन तथा आसुरभाव का अनाचार ही परशुराम के आने का कारण बनते हैं। राष्ट्रकवि दिनकर वर्तमान के सन्दर्भ में प्रतीक्षारत हैं कि परशुराम पुनः आयेंगे—

अम्बर में जो अप्रतिम क्रोध छाया है,
पावक जो हिम को फोड़ निकल आया है।
वह किसी भाँति भी वृथा नहीं जायेगा,
आयेगा, अपना महावीर आयेगा।
हाँ, वही रूप प्रज्वलित विभासित नर का,
अंशावतार सम्मिलित विष्णु-शंकर का।
हाँ वही दुरित से जो न सन्धि करता है,
जो सत्य धर्म के लिए खड्ग धरता है।
हाँ, वही न्यायवंचित की जो आशा है,
निर्धनों, दीनदलितों की अभिलाषा है।
है असुर भाव का शत्रु, पुण्य त्राता है,
भयभीत मनुज के लिए अभयदाता है।
है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
आ रहा नए भारत का भाग्य पुरुष है।।

(परशुराम की प्रतीक्षा पृ० १२)

जिस समय परशुराम ने प्रतिज्ञा की—

त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि ध्रुवं महीम्।
कार्तवीर्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम्।।
पितॄंश्च तर्पयिष्यामि क्षत्रियक्षतजेन च।

(वही २७/४५-४६)

और अपनी माता को आततायी वध की अनिवार्यता बतलाई, उसी समय भृगुवंश के आदि पुरुष महर्षि भृगु स्वयं दिव्य देह से अवतरित हुए। परशुराम तथा माता रेणुका ने श्रद्धापूर्वक सादर प्रणाम किया। भृगु ने शान्त गम्भीर वाणी में परशुराम को समझाया—पुत्र तुम मेरे वंश में ज्ञानी, वीर, धीर उत्पन्न हुए हो। संसार में जन्म और मरण जल के बुद्बुद् (बुलबुले) की भाँति है। जो होना होता है, वह होता ही है—

ज्ञानिनो मा रुदन्त्येवं मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम्।
रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम्।।

(वही २७/६२)

"भावी को कोई नहीं टाल सकता।" महर्षि भृगु ने समयानुकूल प्रबोधन करते हुए

समझाया। रोने से, अश्रुपात से मृत व्यक्ति नरक में वास करता है। तुम्हें रोना नहीं चाहिए। यदि कोई अपने सम्बन्धियों भाई-बन्धु, पिता माता या कुटुम्बियों का नामोच्चारण करके सौ वर्ष पर्यन्त भी रोता रहे तो वे वापिस तो नहीं लौटते। भूत, भविष्य, वर्तमान का निर्धारण हमारे बस में नहीं है। उसका नियन्ता तो कोई अन्य है। संसार मायामय है, मायापति ही इसका नियामक है। मृत्यु के पश्चात् पाञ्चभौतिक शरीर के सभी तत्त्व अपने-अपने अंशी के पास चले जाते हैं उसमें विलीन हो जाते हैं। त्वचा आदि पृथ्वी के अंश पृथ्वी, जलांश को जल, वायु के अंश को वायु, शून्य तत्त्व को आकाश एवं तेज के अंश को तेज ग्रहण कर लेता है। सभी अंश समयानुसार अंशी में विलीन हो जाते हैं। रोने का कोई लाभ नहीं है। गत का केवल नाम, यश, स्मृति, कर्म और कथामात्र शेष रह जाते हैं—

संकेताभिधमुच्चार्य यद्रुदन्ति च बान्धवाः।
शतवर्षं रुदित्वा तं न प्राप्नुवन्ति निश्चितम्।।
पार्थिवांशञ्च पृथिवी गृह्णाति च त्वचादिकम्।
तोयांशञ्च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा।
वाय्वंशञ्च तथा वायुस्तेजस्तेजांशकन्तथा।।
सर्वे विलीनाः सर्वेषु कोवाऽऽयास्यति रोदनात्।
नामश्रुतियशः कर्म कथा मात्रावशेषिताः।।

(वही २७/६२-६५)

महर्षि भृगु ने रेणुका को भी उसके कर्त्तव्य कर्म के लिए शास्त्रसम्मत विधि बतलाई। वह अपने प्रिय पति देव के साथ सती होने को तत्पर हो गई। भृगु ने अपने तपोबल से मृत्सञ्जीवनी विद्या के प्रभाव से जमदग्नि को कुछ समय के लिए पुनर्जीवित कर दिया। वे सुप्त मनुष्य के समान जागृत अवस्था में आ गये और भगवत्स्मरण करते हुए उठ खड़े हुए। वहाँ अपने वंशप्रवर्तक महर्षि भृगु को देखकर वे प्रसन्नता मिश्रित आश्चर्य से गद्गद् हो गये। विनम्रतापूर्वक प्रणाम निवेदन करते हुए जमदग्नि ने भृगु से जिज्ञासा की—"पूज्यवर! मैंने तो "अतिथिदेवो भव" इस वेदाज्ञा का पालन करते हुए कार्तवीर्य का यथोचित सत्कार किया था फिर भी उसने मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया?" भृगु ने उत्तर दिया "तात! कार्तवीर्य ने ऐसा दुर्व्यवहार वसिष्ठ के शाप के कारण किया।" उन्होंने कहा था "दुष्ट! सहस्रार्जुन जब तू किसी ब्राह्मण का अपराध करेगा तभी तेरी मृत्यु होगी। और ध्यान रखना तेरी मृत्यु भगवान् विष्णु के अंशभूत, जमदग्नितनय परशुराम के हाथों होगी।"

तपोराशि महर्षि भृगु इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। जमदग्नि को अपने पुत्र की प्रतिज्ञा के विषय में पता चला तो उन्होंने शान्तभाव से समझाया—'पुत्र राम! यद्यपि तुमने अत्यन्त दुष्कर कठिन प्रतिज्ञा की है, फिर भी 'अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।' सज्जन जो वचन कहते हैं उसका प्राणपण से निर्वाह करते हैं। तुम इस सम्बन्ध में ब्रह्मा से मिलो वे तुम्हें उचित परामर्श देंगे और तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे। अब तुम मेरा और्ध्वदैहिक संस्कार वेदोक्त विधि से सम्पन्न करो।" इतना कहकर जमदग्नि भी अन्तर्धान हो गये।

भगवती रेणुका भृगुवंश प्रवर्तक महर्षि भृगु के आदेशानुसार अपने पुत्रों को

यथोचित ज्ञानोपदेश देकर और अपने पति को अङ्क में लेकर चितारूढ़ हो गई। परशुराम ने मुखाग्नि प्रदान की। अन्य भ्राता तथा शिष्यों ने अन्त्येष्टि विधानपूर्ण किया। 'राम राम राम' का उच्चारण करती देवी रेणुका भस्मीभूत हो गई। यद्यपि रेणुका ने पुत्रों को बहुत समझाया था, फिर भी वे सब अपने माता-पिता को उनके वात्सल्य को स्मरण करके विलाप करने लगे। तभी शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी विष्णुदूत दिव्यरथ लेकर वहाँ उपस्थित हुए और जमदग्नि सहित रेणुका को सादर लेकर वैकुण्ठ लोक पहुँचे जहाँ दोनों मङ्गलमूर्ति श्रीमन्नारायण की शाश्वती सेवा में संलग्न हो गये। उन्हें सन्निधि प्राप्त हुई—

रामरामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य सा सती।
पुरस्तात् पर्शुरामस्य भस्मीभूता बभूव सा।।
भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राजग्मु हरेश्चराः।
शंखचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः।।
रथे कृत्वा रेणुकान्तां गत्वा ब्रह्मलोककम्।
जमदग्निं समादाय प्रजग्मुर्हरि सन्निधिम्।।
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थुर्हरि सन्निधौ।
कृत्वा दास्यं हरेः शाश्वत् सर्वमङ्गलमंगलम्।।

(वही २८/४३-४७)

परशुराम ने पिता की शेष और्ध्व दैहिक क्रियाएँ भी विधिविधानपूर्वक सम्पन्न की। सभी कार्यों से निवृत्त होकर वे भगवान् ब्रह्मा के पास ब्रह्मलोक में गये। वहाँ दिव्य स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान पितामह ब्रह्मा के चरणारविन्द में सविनय प्रणाम किया और उच्च स्वर में रोदन करते हुए रुद्धकण्ठ से अपनी व्यथाकथा एवं अपने पितृचरण जमदग्नि और कार्तवीर्य की घटना उन्हें सुनाई। किस प्रकर कार्तवीर्य कपिला कामधेनु को बलात् ले गया, किस भाँति उसने पिता जमदग्नि को नृशंसतापूर्वक मारा और माता रेणुका किस स्थिति में सती हो गई। परशुराम ने विह्वल वाणी में कहा कि आप ही मेरे माता, पिता, गुरु सब कुछ हैं इस समय मैं अपने शत्रुओं के वध का उपाय पूछने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ—

तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
धातारं सर्वजगतां कर्त्तारमीश्वरं परम्।।
निरुध्यवाष्पं स पुनरुवाच करुणानिधिम्।
माता मेऽनुगता साध्वी मां विहाय जगद्गुरो।।
अधुनाहमनाथश्च त्वं मे माता पिता गुरुः।
कर्ता पालयिता दाता पाहि मां शरणागतम्।।
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया।
उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिसूदनं कुरु।।

(वही २६/५६,६२,६३,६४)

जमदग्नि पुत्र परशुराम की करुणार्द्र व्यथा की मर्मस्पर्शी कथा तथा क्षत्रियों के वध

की प्रतिज्ञा श्रवण करके सहज कृपालु ब्रह्मा शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए बोले–'तात! तुमने बहुत भीषण प्रतिज्ञा की है। तुम एक क्षत्रिय (कार्तवीर्य) के दोष के कारण पूरी जाति को नष्ट करना चाहते हो, वह भी इक्कीस बार!! मैंने बड़े परिश्रम से सृष्टि की रचना की है। ईश्वर की आज्ञा से ही सब होता है। पृथ्वी पर बहुत से राजा शंकर के परमभक्त हैं। बिना शिव की अनुज्ञा उन्हें मारने का कौन साहस कर सकता है। योजनापूर्वक उपाय करने पर ही सफलता प्राप्त होती है। तुम शिवलोक में शंकर की शरण में जाओ। वे आशुतोष हैं, औघड़ दानी हैं, देवों के देव महादेव हैं। उनके भक्तों के पास दिव्य कवच हैं, दिव्य शक्ति हैं जो शंकर के द्वारा प्रदत्त हैं। उनके वध का उपाय शंकर ही बतला सकते हैं। तुम शंकर की आराधना करके उनसे श्रीकृष्ण के मन्त्र और कवच ग्रहण करो। यह वैष्णव तेज परम दुर्लभ है। शंकर की दया से प्राप्त वैष्णव तेज ही शिव और शक्ति के तेजों पर विजय प्राप्त करवा सकता है। शिव तुम्हारे जन्मजन्मातर के गुरु हैं, इसलिए मुझसे मन्त्र ग्रहण करना उचित नहीं है। कर्मभोग से ही मन्त्र, स्वामी, स्त्री, गुरु और देवता प्राप्त होते हैं। हे जमदग्निनन्दन! तुम दानी शंकर से दिव्य पाशुपतास्त्र प्राप्त करके दुष्ट क्षत्रियों का संहार कर सकते हो।'



आशुतोष की शरण में

ब्रह्मा जी के वचनों को सुनकर परशुराम ने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से शिवलोक की ओर प्रस्थान किया। शिवलोक की दिव्यता का वर्णन चतुर्मुख ब्रह्मा और वाणी की अधिष्ठात्री शारदा भी करने में समर्थ नहीं। वह ब्रह्मलोक से एक लक्षयोजन ऊपर स्थित है। उसके दक्षिण में वैकुण्ठ, वामभाग में गौरीलोक और नीचे ध्रुव लोक हैं। मन की गति से भी तीव्र वेगशाली परशुराम ने शिवलोक में पहुँचकर रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान, नाग का यज्ञोपवीत धारण किये हुए, व्याघ्र चर्म से विभूषित आत्माराम, पूर्णकाम, चन्द्रशेखर, देव देवेश शंकर के दर्शन किये। भक्तों के कष्टहरण करने वाले, मनोवांछित फल प्रदान करने वाले शिव को साष्टांग प्रणाम किया। शिव के वामभाग में कार्तिकेय, दक्षिण भाग में गणपति, अङ्क में पराम्बा भगवती पार्वती और सामने नन्दिकेश्वर तथा वीरभद्र विराजमान थे। इस दिव्य झांकी के दर्शन से कृतार्थ परशुराम ने सब को श्रद्धापूर्वक प्रणाम निवेदन करते हुए प्रार्थना की–

ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्।
त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽति दीनकम्।।
अद्य मे सकलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्।
स्वप्नादृष्टञ्च भक्तानां पश्यामि चक्षुषाधुना।।

(वही २९/४३-४४)

अर्थात हे प्रभो! योग और ध्यान से भी असाध्य क्षमता वाले मुझ दीन की रक्षा कीजिए। आप तो करुणा के सागर हैं, दीन बन्धु हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवन सुजीवन बन गया। स्वप्न में भी भक्तों को आपके दर्शन दुर्लभ हैं और मैं अपने नेत्रों को आपके पावन दर्शनों से धन्य कर रहा हूँ। कोटि-कोटि सूर्य स्वरूप, कोटि-कोटि चन्द्ररूप, वायु रूप, जलरूप, तेजोमय शंकर के चरणों में मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। अनन्तानन्त सृष्टियों को क्षण मात्र में लीला से ही संहार करने वाले, कालों के भी काल महाकाल को मैं प्रणाम करता हूँ। ये कहते हुए परशुराम ने शिव के चरण कमलों में पुनः-पुनः प्रणाम निवेदन किया।

शिव ने मधुरवाणी में उनके दुःखित होने का कारण पूछा। परशुराम ने पूरा वृत्तान्त विस्तार से बतलाया। माँ पार्वती और कालिका ने आश्चर्यपूर्वक कहा—अरे! तुम उस सहस्रार्जुन कार्तवीर्य सहित क्षत्रियों का विनाश करना चाहते हो जिसने दशानन रावण को भी पराजित कर दिया!! उसको दत्तात्रेय भगवान् ने अमोघशक्ति और कवच प्रदान किया है। उस शक्ति से ही उसने तुम्हारे पिता का वध किया है।

परशुराम ने मौनभाव से शंकर के चरणों को पकड़ लिया। उनके नेत्र छलछला रहे थे। इस मुद्रा को देखकर आशुतोष द्रवित हो गये। मन्द-मन्द मुसकाते हुए बोले—

अद्य प्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान्।
दास्यामि मन्त्रं गुह्यन्ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।

(वही ३०/२१)

"हे वत्स! आज से तुम मेरे पुत्र के समान हो। मैं तुम्हें तीनों लोकों में दुर्लभ गुप्तमन्त्र प्रदान करूँगा।" ये कहकर भोले शंकर ने "त्रैलोक्य विजय" नाम का अत्यन्त विलक्षण, चमत्कारी कवच प्रदान किया साथ ही उसके अनुष्ठान की प्रक्रिया, स्थान, नियम, पूजाविधान, प्रयोग, संख्या आदि की पूर्ण विधि का उपदेश भी दिया। परशुराम चिरकाल तक वहाँ रहे। भगवान् शूलपाणी ने परशुराम को वेद-वेदांग, अस्त्र, शस्त्र, गदा, शक्ति, उत्तम त्रिशूल, परशु, धनुष विद्या आदि का सांगोपांग अध्ययन करवाया। शस्त्रास्त्रों के प्रयोग, आत्मरक्षा के उपाय, मायायुद्ध, सेना का संहार, सेना की रक्षा और संसार को मोहित करने की विद्या भी सिखाई। जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और निद्रा पर विजय प्राप्त करने का रहस्य भी समझाया।

अन्त में, शंकर ने सुख, मोक्ष प्रदायी, शत्रु संहारकारक और स्वसर्वांगरक्षक मन्त्र प्रदान किया तथा उसकी विधि भी बतलाई। मन्त्रों में 'मन्त्रराज' के रूप में प्रतिष्ठित इस मन्त्र के पुरश्चरण की प्रक्रिया विधान, ध्यान और फल भी बतलाया। सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के ध्यान एवं जप से मन्त्र सिद्ध होने के उपरान्त साधक, स्वयं सिद्ध बन जाता है, विश्व उसका वशवर्ती हो जाता है, वह समुद्रों को पी सकता है, सारे विश्व का संहार कर सकता है और इस पाञ्चभौतिक शरीर से ही वैकुण्ठ में जा सकता है। उसके चरणों की रेणु के स्पर्श मात्र से सब तीर्थ और पृथ्वी पवित्र हो जाती है। सामवेदोक्त श्रीकृष्ण का ध्यान सर्वविध बाधाओं का प्रशमन करने वाला है। जो इस 'श्रीकृष्णस्तोत्र' का पाठ करता है वह स्वयं कल्पवृक्ष के सदृश हो जाता है। पुष्पाञ्जलि के समय निम्नाङ्कित श्लोकों से भगवान् श्रीकृष्ण का स्तवन करे, उन्हें नमन करे—

नवीन जलदश्यामं नीलेन्दीवर लोचनम्।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्।।
कोटिकन्दर्प लावण्यलीलाधाम मनोहरम्।
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम्।।
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लास समुत्सुकम्।
रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्।।
परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्।
सत्यं ब्रह्मस्वरूपञ्च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्।।

(वही ३२/८,९,६७,६९)

अशुतोष शंकर ने अपना पाशुपतास्त्र, विष्णुद्वारा प्रदत्त दिव्यधनुष तथा अमोघ परशु भी परशुराम को प्रदान किया और आशीर्वाद दिया अब तुम इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन बनाओगे।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्।
ममाशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः।।

(वही ३२/७६)

शिव के चरण कमलों में प्रणामाञ्जलि निवेदन करने के उपरान्त परशुराम ने

श्रद्धापूर्वक परामबा भगवती पार्वती, कार्तिकेय, गणपति नन्दीश्वर आदि को भी नमस्कार किया और उनकी आज्ञा प्राप्त करके वे अपने आश्रम में लौट आये।

इसके पश्चात् पुष्कर तीर्थ में जाकर एकमास पर्यन्त अन्न, जल का परित्याग करके श्रद्धाभक्तिपूर्वक कृष्ण की आराधना की। अकस्मात् दसों दिशाओं को प्रकाशमान करता हुआ एक दिव्य रत्नयान अवतरित हुआ जिस पर कोटि-कोटि कन्दर्प कमनीय श्रीकृष्ण विराजमान थे। परशुराम ने विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके करबद्ध याचना की कि मैं इक्कीस बार क्षत्रियों से पृथ्वी को रहित कर सकूँ। श्रीकृष्ण वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। परशुराम भी सुप्रसन्न मन से आश्रम लौट आये। लौटते समय शुभ शकुन हो रहे थे।

आश्रम में आकर उन्होंने अपने भाई बन्धुओं, इष्ट जनों को एकत्रित करके विचार विमर्श किया और शुभ मुहूर्त में विजययात्रा के लिए प्रस्थान का निर्णय किया। रात्रि में उन्हें सिद्धि प्रदान करने वाले स्वप्न आये। स्वप्न में दिव्य अक्षय वट, स्वस्तिक का चिह्न, कमल के पुष्प, फलों से युक्त वृक्ष, देवप्रतिमा, शंख, सुवर्ण, रत्न, जलपूर्ण कुम्भ, दधि, हंसपंक्ति, मण्डप में पूजा करते ब्राह्मण, पुष्पों की वर्षा, सिंह कामधेनु, छत्र, चँवर, सरोवर, शिवलिंग, कमलासना लक्ष्मी, गरूड़ासीन विष्णु, राधा कृष्ण एवं अन्य भी शुभ सूचक वस्तुओं को देखा।



प्रबल प्रतिशोध

प्रातः काल हुआ। नित्यकर्म से निवृत्त होकर परशुराम ने अपना दूत कार्तवीर्य के पास भेजा। दूत ने उचित शिष्टाचार पूर्वक राजा को अभिवादन किया और सन्देश सुनाया कि युद्धभूमि में परशुराम आपकी प्रतीक्षा में है। इक्कीस बार क्षत्रिय शून्य पृथ्वी को बनाने की प्रतिज्ञा पूरी करने को वह तत्पर है। यदि आप यथा समय नहीं पहुँचे तो वह नगर पर आक्रमण करेगा।

कार्तवीर्य कवच धारण करके शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर युद्धभूमि में जाने को तत्पर हो गया। तभी उसकी पत्नी मनोरमा ने आकर प्रार्थना की कि आप युद्ध करने के लिए न जाइये अपने अपराध के लिए परशुराम से क्षमा याचना कर लीजिए। राजा ने मनोरमा को समझाया कि मुझे भी रात्रि में भयंकर स्वप्न आये हैं जिनसे यह निश्चय होता है कि मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। कालचक्र बड़ा प्रबल होता है। सुख दुःख, शोक, कलह, हानि, लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश मान और अपमान सब काल के आधीन हैं। काल स्वयं श्रीकृष्ण हैं। सृष्टि का निर्माण, पालन और संहार काल ही करता है। काल साक्षात् स्वयं नारायण हैं। उनकी आज्ञा से ही संसार की गतिविधि चलती है—

स्रष्टा सृजति सृष्टिञ्च संहर्ता संहरेत् पुनः।
पाता पाति च भूतानि यस्याज्ञां परिपालयेत्।।
यस्याज्ञया वाति वातः सन्ततंभय विह्वलः।
शश्वत् सञ्चरते मृत्युः सूर्यस्तपति सन्ततम्।।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत्।
आविर्भूता तिरोभूता सृष्टिरेव तदाज्ञया।।
तस्याज्ञया भवेत् सर्वं न किञ्चित्स्वेच्छयानृणाम्।

(वही ३४/६९, ७०, ७१, ७३)

प्रिये! मैं जानता हूँ कि परशुराम साक्षात् नारायण के अवतार हैं, शंकर की आराधना करके उन्होंने "त्रैलोक्यविजय" कवच तथा "श्रीकृष्णदिव्यस्तोत्र" प्राप्त कर लिया है। उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को दुष्ट राजाओं से रहित करने की प्रतिज्ञा की है। उनकी प्रतिज्ञा विफल कैसे हो सकती है!! मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि मैं उनका वध्य हूँ। फिर मैं उनकी शरण में कैसे जा सकता हूँ! प्रतिष्ठित व्यक्ति की अपकीर्ति मृत्यु से भी अधिक व दुःखप्रद होती है। मैं युद्ध करते हुए मरना अच्छा समझता हूँ—

नारायणांशो भगवान् पर्शुरामो महाबलः।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति।।
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन।
निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामि सुव्रते।।
ज्ञात्वा सर्वं भविष्यञ्च शरणं यामि तत्कथम्।
प्रतिष्ठितानां चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।

(वही ३४/७४, ७५, ७६)

मनोरमा भी समझ गई कि भावी प्रबल है। वह भविष्य जान गई। अपने पुत्रों, सम्बन्धियों को, सेवकों को अपने समक्ष बुलाया और भगवन्नाम का स्मरण कीर्तन करते हुए योग विद्या से षट्चक्र का भेदन करके प्राण-परित्याग कर दिया। अर्धाङ्गिनी की मृतदेह को देखते ही कार्तवीर्य के धैर्य का बान्ध टूट गया। उसने कवच उतार दिया और तार स्वर से रुदन करते हुए विलाप करने लगा। तभी आकाशवाणी हुई कि राजन्! संसार तो जल के बुलबुले के समान है। आप ज्ञानी हैं, दत्तात्रेय के कृपापात्र हैं अतः धैर्यधारण कीजिए। आपकी पत्नी वैकुण्ठ लोक में आपकी प्रतीक्षा कर रही है, आप भी युद्धक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करके वैकुण्ठ जाइये। विलाप मत कीजिए।

कार्तवीर्य ने पत्नी का और्ध्व दैहिक संस्कार सम्पन्न किया और अपनी विशाल वाहिनी को लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। यद्यपि मार्ग में अपशुकन सूचक अमाङ्गलिक वस्तुएँ दृष्टिगोचर हो रही थी, फिर भी राजा वापिस नहीं लौटा। वाद्य बज रहे थे, भेरी घोष हो रहा था, डिण्डिम ध्वनि से पृथ्वी आकाश व्याप्त थे। नर्मदा के तट पर परशुराम राजा की प्रतीक्षा कर रहे थे। युद्धभूमि में पहुँचकर परशुराम को अपने समक्ष देखते ही राजा रथ से नीचे उतरा। निकट जाकर परशुराम को साष्टांग प्रणाम किया। परशुराम ने भी स्वर्गादि दिव्य लोकों की प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। राजा पुनः आकर रथ में बैठ गया।

कार्तवीर्य के साथ महाबली मत्स्यराज, विदर्भ नरेश बृहद्बल, मिथिलाधिपति सोमदत्त तथा सुचन्द्र भी युद्ध के लिए आये थे। परशुराम ने चतुरंगिणी विशाल सेना और सभी राजाओं से सुशोभित, रथारूढ़ कार्तवीर्य से कहा—"राजन्! आप धर्मनिष्ठ हैं, चन्द्रवंश के भूषण हैं, नारायणांश दत्तात्रेय के शिष्य हैं, स्वयं वेदवेदांगवेत्ता विद्वान् हैं। फिर आपने भयंकर अधर्माचरण क्यों किया? आपने अपने गुरुतुल्य, मेरे पूज्य पितृचरण कुलपति जमदग्नि का लोभाभिभूत होकर वध क्यों किया? कामधेनु को बलात् ले जाने का दुर्विचार आपके मन में क्यों आया? मेरी माता रेणुका अपने स्वामी के साथ शोकाभिभूत होकर सती हो गई। उसके मरण के कारण भी आप ही हैं। आपने मेरे पिता के अतिथि सत्कार का यही बदला दिया!! क्या आप को ज्ञात नहीं कि इतने जघन्य कृत्यों का परलोक में आपको क्या दण्ड मिलेगा!! आपने अपने सारे पुण्यों को नष्ट कर लिया। आपका सारा यश इस दुष्कृत्य से अपयश में बदल गया है। आने वाले समय में आपको नृशंस पापिष्ठ, ब्राह्मणघाती, गौ-अपहर्ता, कृतघ्न और लोभी के रूप में स्मरण किया जायेगा। आपके पूर्व पुरुष पितर, ये सब राजा, सारी सेना और इतिहास इस बातका साक्षी रहेगा कि अपने अनार्य कर्म का दण्ड आपको भोगना पड़ा। सत् और असत् का; उचित और अनुचित का निर्णय यहाँ उपस्थित महानुभाव और इस पूरी घटना के ज्ञाता स्वयं अपने विवेक के आधार पर करेंगे।"

कार्तवीर्य अर्जुन ने परशुराम का वक्तव्य शान्तभाव से सुना और सन्तुलित शब्दावली में उत्तर दिया—

रागी राजसिकं कार्यं कुरुते कर्म्मरागतः।
रागान्धश्च राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्तितः।।

रागतः कामधेनुश्च मया भिक्षा कृता मुनेः।
को दोषः एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः।।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति।
त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्याश्च पालनं कुरु।।

(वही ३५/७७-७८, ८४)

रजोगुण राजा का अपरिहार्य तत्व है। विषयानुराग राजा की प्रकृतिगत विशेषता होती है। मैंने इसी कारण कामधेनु को लेना चाहा था यह कोई दोष की बात नहीं। बातें बनाने से कोई लाभ नहीं है। आपने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियशून्य बनाने की प्रतिज्ञा की है, उसे पूरा कीजिए।

कार्तवीर्य के ये कहते ही परशुराम के भाई भयंकर शस्त्रास्त्र लेकर राजा की सेना पर आक्रमण करने लगे। मत्स्यराज के पास 'शिवकवच' था जिसके कारण सुरक्षित था। महर्षि दुर्वासा द्वारा प्रदत्त इस कवच को शृंगी नामक ऋषि ने याचना करके मांग लिया। तब शूल के द्वारा जमदग्निपुत्र ने उसका संहार कर दिया (इस कवच का तत्तत् पुराणों में विस्तृत विधान वर्णित है।)

मत्स्यराज के मारे जाने पर मिथिलाधिपति सोमदत्त, निषध नरेश बृहद्बल तथा सुचन्द्र युद्ध क्षेत्र में आये। भीषण युद्ध हुआ जमदग्नितनय के प्रबल पराक्रम से सुचन्द्र शिथिल होने लगा तभी भगवती भद्रकाली उसकी रक्षा के लिए अवतरित हुई। परशुराम के सभी शस्त्रों को काली भगवती ने निष्फल कर दिया। तब वे पराम्बा की स्तुति करने लगे–

प्रसीद जगतां मातः सृष्टि संहार कारिणि!
त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थकं कुरु।।

(वही ३६/३१)

जगत का सर्जन और संहार करनेवाली हे माता! प्रसन्न होकर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिए, मैं आपका शरणागत हूँ!

तभी ब्रह्मा जी ने प्रकट होकर कहा तात परशुराम! दुर्वासा महर्षि ने ये दिव्य काली कवच प्रसन्न होकर राजा सुचन्द्र को प्रदान किया है, इस कवच की विद्यमानता में तुम कुछ भी न कर पाओगे। तब माता की आज्ञा से परशुराम ने वह कवच माँग लिया। राजा ने कवच भी और सिद्धमन्त्र भी परशुराम को प्रदान किया। तब सुचन्द्र शूल प्रहार से मारा गया। (कालीकवच भी सिद्ध कवचों में परिगणित है।)

सुचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसका पराक्रमी पुत्र पुष्कराक्ष युद्ध करने के लिए आया। उसके गले में परम सिद्ध महालक्ष्मी कवच था। जमदग्निपुत्रों तथा पुष्कराक्ष में भयंकर युद्ध हुआ। जिन भी शस्त्रों का प्रहार एक-दूसरे पर करते वे बीच में ही काट दिये जाते। तब स्वयं परशुराम युद्धार्थ सामने आये। राम के द्वारा छोड़े गये शस्त्रास्त्रों को भी पुष्कराक्ष ने खण्डित कर दिया। अन्त में परशुराम ने भगवान् शंकर को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए

पाशुपतास्त्र को प्रहार के लिए अभिमंत्रित करने की तैयारी की। उसी समय ब्राह्मणवेश में स्वयं नारायण वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने परशुराम को विस्मयपूर्वक कहा—

"आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर भी ये क्या कर रहे हैं? एक व्यक्ति को मारने के लिए आप दिव्य पाशुपतास्त्र का प्रयोग कर रहे हैं!! यह तो सम्पूर्ण विश्व को भस्म कर डालेगा! केवल मात्र सुदर्शन चक्र के द्वारा परमप्रभु श्रीकृष्ण ही इसे रोकेने की शक्ति रखते हैं। इसलिए पाशुपतास्त्र तथा सुदर्शन चक्र का प्रयोग असाधारण स्थिति में ही करना उचित है। आप पुष्कराक्ष उसके पुत्र के विषय में सम्भवतः नहीं जानते। इन्होंने अपनी दाईं भुजा पर महालक्ष्मी कवच धारण किया हुआ है। इस कवच के रहते हुए त्रिभुवन में इन्हें कोई भी नहीं जीत सकता। आपकी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए मैं स्वयं प्रयास करके ये कवच इनसे लाता हूँ। परशुराम के सानुरोध पूछने पर ब्राह्मण ने मन्द-मन्द मुसकाते हुए "मैं विष्णु हूँ, तुम्हारे द्वारा की गई प्रतिज्ञा मेरी ही है।" ऐसा कहकर वे पुष्कराक्ष के पास गये और महालक्ष्मी कवच की याचना की। विष्णुमाया से मुग्ध पुष्कराक्ष और उसके पुत्र ने कवच दे दिया, विष्णु उसे लेकर वैकुण्ठ चले गये। यह कवच स्वयं दत्तात्रेय भगवान् ने पुष्कराक्ष को प्रदान किया था। (यह कवच भी परमसिद्धिप्रद और अमोघ माना जाता है।) महालक्ष्मी कवच के साथ-साथ दुर्गाकवच भी इन दोनों के पास था जो दुर्वासा ने कृपापूर्वक दिया था। भगवान् विष्णु दुर्गाकवच भी ले गये थे। दोनों अमोघ कवचों से रहित होने पर भी पुष्कराक्ष और उसके पुत्र सहस्राक्ष ने असाधारण पराक्रम का प्रदर्शन किया किया किन्तु महाकाल परशुराम के पुत्र परशु ने उन्हें खण्ड-खण्ड कर डाला।

अपने सभी सहयोगी मित्रों के मारे जाने पर कार्तवीर्य स्वयं युद्धभूमि में उपस्थित हुआ। कार्तवीर्य के आक्रमण के सामने परशुराम के भाई और शिष्य ठहर न पाये। अनवरत बाणवर्षा ने सबको क्षत-विक्षत कर दिया। राजा ने इतनी भयंकर बाणों की बौछार की कि परशुराम को अपनी और राजा की सेना भी दिखाई न दी। दिव्य अस्त्रों से विलक्षण युद्ध हो रहा था परशुराम नागास्त्र का प्रयोग छोड़ते तो राजा गरुड़ास्त्र से उसका प्रतिरोध करता। राम आग्नेयास्त्र का प्रयोग करते तो राजा वारुणास्त्र से उसे शान्त कर देता। सब स्तब्ध होकर राम और राजा कार्तवीर्य का "न भूतो न भविष्यति" युद्ध देख रहे थे। राम के पर्वतास्त्र को महाराजा ने वायव्यास्त्र से रोक दिया। राम ने जब माहेश्वरास्त्र का सन्धान किया तो राजा ने दिव्य वैष्णवास्त्र से सहजतापूर्वक उसे निष्प्रभ कर दिया। अब तो कार्तवीर्य ने भगवान् दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त परमोज्ज्वल शूल को अभिमन्त्रित करके हाथ में लिया। प्रलयकाल का दृश्य मानो उपस्थित हो गया! सैकड़ों सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशमान उस शूल से भयङ्कर ज्वालाएँ निकल रही थी, ज्यों ही कार्तवीर्य ने परशुराम के ऊपर उसे फेंका, स्पर्शमात्र होते ही वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गये। गिरते-गिरते वे श्रीमन्नारायण का स्मरण कर रहे थे।

परशुराम के भूमि पर गिरते ही देवता व्याकुल हो गये, वे भय से काँप रहे थे, न जाने कार्तवीर्य क्या कर डाले!! तभी ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी समरांगण में आ गये। नारायण के संकेत से महाज्ञानी शंकर ने परशुराम की मूर्च्छा दूर की। वे मानो गहन निद्रा से सोकर उठे हों। चेतना लौटते ही भार्गव उठे, त्रिदेवों को विनयावनत होकर प्रणाम किया। राजा कार्तवीर्य ने भी सभी देवताओं को श्रद्धापूर्वक प्रणतिनिवेदन किया। भगवान्

दत्तात्रेय भी रणभूमि में पधारे। वे अपने प्रिय शिष्य कार्तवीर्य की रक्षा के निमित्त आये थे। तभी परशुराम ने रोषपूर्वक पाशुपतास्त्र को प्रहार के लिए पुनः हाथ में लिया, किन्तु दत्त भगवान् द्वारा प्रदत्त "श्रीकृष्ण कवच" उसकी चारों ओर से रक्षा कर रहा था। मुरलीधर श्रीकृष्ण मुरली की मधुर ध्वनि करते हुए उसके संरक्षण में अपने पार्षदों सहित संलग्न थे। गोपवेशधारी घनश्याम की छवि निराली थी। सब देवता विस्मयानन्दमग्न होकर उन्हें निहार रहे थे। तभी आकाशवाणी हुई—

दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः।
राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्न गुटिकान्वितम्।।

(वही ४०/२९)

अर्थात्—दत्त द्वारा प्रदत्त 'श्रीकृष्णकवच' राजा की दाईं भुजा में रत्न की गुटिका से युक्त बन्धा हुआ है। वह परशुराम के पास होना आवश्यक है। इतना सुनते ही शंकर ब्राह्मण के रूप में कार्तवीर्य के पास पहुँचे और भिक्षा में वह कवच लेकर भार्गव परशुराम को दे दिया। परशुराम ने कवच धारण करके पाशुपतास्त्र के प्रहार से कार्तवीर्य को भूमि पर गिरा दिया और परशु से उसकी सहस्त्र भुजाओं को वृक्ष की शाखा की भाँति काट डाला। अपने उद्धत आचरण का दण्ड राजा को प्राप्त होना ही था। अपनी दुर्बुद्धि और दुर्व्यवहार के कारण वह शक्तिहीन हो चुका था, तब रेणुकातनय परशुराम ने उसका मस्तक भी परशु से काट गिराया—

ततः रामो महातेजास्तत्सैन्यं नृपतेस्तदा।
निर्ददाह क्षणात्सर्वं वैष्णवास्त्रेण लीलया।।
ततः परशुना रामस्तीक्ष्णेनाऽमित विक्रमः।
चिच्छेद बाहुसाहस्त्रं कार्तवीर्यस्य दुर्मतेः।।
नष्टवीर्यो बभूवाऽत्र पापेन स्वेन दुर्मतिः।
चिच्छेद तच्छिरः क्रुद्धो रेणुका तनयो बली।।

(पद्मपुराण षष्ठोत्तरखण्ड २४१/६८-७०)

सहस्त्रबाहु कार्तवीर्य के संहार के उपरान्त देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध आदि ने नभोमण्डल से परशुराम पर पुष्पवृष्टि की। उनके दिव्य उज्ज्वल यश से विश्व प्रकाशमान हो गया। स्वयं पितामह ब्रह्मा, भृगु, अङ्गिरा, शुक्राचार्य, च्यवन, वाल्मीकि, जमदग्नि आदि ब्रह्मलोक से भूमण्डल पर पधारे। सब हर्ष से गद्गद् थे, आनन्द की अधिकता से नेत्र अश्रुओं से छलछला रहे थे, उनका शरीर रोमाञ्चित था। सब दूर्वा और पुष्प हाथ में लेकर मङ्गलाशीर्वाद प्रदान कर रहे थे। चारों ओर प्रसन्नतासूचक दुन्दुभिनाद हो रहा था। "जय हो जय हो" की कर्णमधुर ध्वनि से वातावरण गुञ्जित था। परशुराम ने सब को साष्टांग प्रणाम किया। कृतज्ञता की सहज भावना से परशुराम भी अभिभूत थे। आनन्द ही आनन्द व्याप्त था—

देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्व किन्नराः।
सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं रामूर्ध्नि च नारद।।

स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हरिशब्दो बभूव ह।
परशुरामस्य यशसा शुभ्रेण पूरितं जगत्।।
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च च्यवनो वाल्मीकिस्तथा।
जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः।।
पुलकांकित सर्वांगाः सानन्दाश्रुसमन्विताः।
दूर्वा पुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मंगलाशिषः।।
प्रणनाम च तान् राम दण्डवत् पतितो भुवि।
(ब्रह्मवैवर्त० गणपति खण्ड ४०/७७-८१)

भावविह्वल ब्रह्मा ने परशुराम को अंक में लेकर स्नेहिल वाणी में कहा—'तात! जन्मप्रदान करनेवाले माता-पिता पूज्यों के भी पूज्यतम हैं। पिता की तुलना में माता की महिमा अधिक है। इनसे भी पूज्य इष्ट देव होता है और इष्टदेव से भी पूज्य गुरु होता है। वास्तव में—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः।।
(वही ४०/८९)

तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की ये गुरु कृपा का ही प्रसाद है। अब तुम यथाशक्य शीघ्र ही अपने इष्टदेव अपने गुरु शंकर की शरण में जाओ। ये समझाकर सभी मुनियों के साथ ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को चले गये और परशुराम कैलाशगमन की योजना बनाने लगे।

अपने प्रबल पराक्रमी पिता की मुत्यु के समाचार से क्रोधाविष्ट उसके पुत्र विशाल सेना लेकर परशुराम को मारने दौड़े। मच्छर हिमालय से टकराने आये! तब राम ने न केवल उन्हें अपितु उनके साथ आये सैनिकों को भी मार डाला।

हरियाणा रामह्रद नामक स्थान पर स्यमन्तपञ्चक क्षेत्र में रामह्रद (सरोवर) कुण्ड शत्रुओं के रक्त से भरकर उनसे अपने पिता जमदग्नि का तर्पण किया। भृगुकुल के पूर्वज महर्षि ऋचीक ने राम को इस क्षत्रियवध से परावृत करने की सफल चेष्टा की—

संक्रुद्धोऽति बलः संख्ये शस्त्रमादाय वीर्यवान्।
जघ्निवान् कार्तवीर्यस्य सुतानेकोऽन्तकोपमः।।
तेषामनुगता ये च क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ।
तांश्च सर्वानयन्मृदि रामः प्रहरतां वरः।।
त्रिसप्त कृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियः प्रभुः।
स्यमन्त पञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान्।।
स तेषु तर्पयामास भृगून् भृगु कुलोद्‌वहः।
साक्षाद् ददर्श चर्चीकं स च राम न्यवारयत्।।
(महाभारत वनपर्व ११७/७-१०)

परशुराम का पूरा जीवन संघर्षमय रहा। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध निरन्तर लड़ते रहे। हैहयवंशी कार्तवीर्य तथा उसके पुत्रों के अतिरिक्त वे दुष्ट क्षत्रियों का संहार करते रहे। उन्होंने यह संहार की प्रक्रिया इक्कीस बार दोहराई। महाभारत में तो ऐसा भी संकेत प्राप्त होता है कि वे एक गर्भ के पश्चात् पुनः उत्पन्न गर्भ को भी नष्ट कर डालते थे—

जातं जातं स गर्भन्तु पुनरेव जघान स।
अरक्षंश्च सुतान् कांश्चित् तदा क्षत्रिय योषितः।।

(महा० शान्तिपर्व ४९/६२)

इतना निश्चित है कि दुष्टक्षत्रियों में 'परशुराम' का नाम एकविभीषिका का रूप धारण कर चुका था। क्षत्रिय नारियां बहुत ही सावधानी से किसी प्रकार कुछ ही पुत्रों को बचा पाई। कितना प्रतिशोध था! रुधिर के पाँच कुण्ड भ रके रक्त से पितरों का तर्पण!! चारों ओर क्षत्रिय कुलों में "त्राहि मां त्राहि मां" की ध्वनि सुनाई देती थी। महर्षि ऋचीक एवं अन्य भी भृगुकुलीय पूर्व पुरुषों ने परशुराम को बहुत समझाया। पितरों ने कहा—"वीरवर! परशुराम, तुम्हारी पितृभक्ति प्रशंसनीय है। तुम्हारा प्रतिशोध अब रुकना चाहिए। हम प्रसन्न हैं। तुम्हारा कल्याण हो। तुमने जो कुण्ड रक्त से भरे हैं वे पावन निर्मल जल में परिवर्तित हो जायेंगे। जो व्यक्ति इन कुण्डों में स्नान करके अपने पितरों का तर्पण करेगा पितृगण उसे अभिलषित वर प्रदान करेंगे।" (वामन पुराण ३५/१-१४)

आज भी ऐसी मान्यता है कि हरियाणा प्रान्त के जीन्द जनपद के अन्तर्गत 'रामह्रद' (रामराय—रामरापिण्डारा) नामक स्थान में एक तालाब है। श्रावण, कार्तिक और वैशाख मास की पूर्णिमा को यहाँ विशेष मेला आयोजित किया जाता है। श्रद्धालु भक्त स्नान दान करते हैं।

एक किंवदन्ती के अनुसार भगवान् राम—सीता एवं लक्ष्मण के साथ यहाँ आये थे। लोकगीत प्रसिद्ध है—

राम खुदाय रामरा लक्ष्मण बाँधे पाल।
सीता ढोवे टोकरी रामचन्द्र की नार।।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान् कृष्ण के भी यहाँ आने का सुस्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। एक बार पूर्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम के साथ श्रीकृष्ण 'स्यमन्त पञ्चक' क्षेत्र में आये थे। उन्होंने 'रामह्रद' में स्नान करने के उपरान्त ब्राह्मणों को विविध प्रकार के वस्त्राभूषण प्रदान किये थे—

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः।
सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा।।
स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयो विधित्सया।
ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनुर्वासःस्रग्रुक्म मालिनीः।।
रामह्रदेषु विधिवत् पुनराप्लुत्य वृष्णयः।

(श्रीमद्भागवत १०/८२/१, २, १०)

प्रायश्चितार्थ यज्ञ

अपने पूर्वज पितृ-पितामहों की आज्ञा को शिरोधार्य करके परशुराम क्षत्रिय संहार से विरत हो गये और ब्राह्मणों के परामर्श से सरस्वती के परमपावन तट पर विश्वजित नामक महायज्ञ का आयोजन किया। इसमें विश्वामित्र, भरद्वाज, मार्कण्डेय, कश्यप आदि महर्षि सम्मिलित हुए। इस यज्ञ में मार्कण्डेय ब्रह्मा, कश्यप अध्वर्यू, गौतम उद्गाता, तथा विश्वामित्र होता बने। ब्राह्मणों को स्यमन्तक मणियाँ प्रदान की गई थी, इसीलिये वह क्षेत्र "स्यमन्त पञ्चक" कहलाया—

ततो यज्ञेन महता जामदग्न्यः प्रतापवान्।
तर्पयामास देवेन्द्रमृत्विग्भ्यः प्रददौ महीम्।।
वेदी चाप्यददद् हैमीं कश्यपाय महात्मने।
दश व्यामावतां कृत्वा नवोत्सेधां विशाम्पते।।

(महाभारत वन० ११७/११-२२)



अपूर्व त्याग

परम प्रतापी परशुराम ने देवेन्द्र को प्रसन्न करने वाला जो महायज्ञ सम्पन्न किया उसमें, अपने द्वारा विजित पूरी भूमि यज्ञ में भाग लेने वाले ब्राह्मणों को दान कर दी। यज्ञ के लिए निर्मित चालीस हाथ लम्बी और चालीस हाथ चौड़ी तथा नौ हाथ ऊँची स्वर्णमयी वेदी कश्यप को प्रदान की। कश्यप की आज्ञा से उस वेदी को अनेक खण्डों में विभाजित करके ब्राह्मणों को दे दिया। आगे चलकर वे ब्राह्मण 'खाण्डवायन' नाम से जाने गये।

यज्ञ पूर्ण हुआ। महर्षि कश्यप ने क्षत्रियों की रक्षा की भावना से परशुराम से कहा—'वत्स! दान दी हुई पृथ्वी पर तुम्हारा निवास करना उचित नहीं, अब तुम दक्षिण तट पर चले जाओ।'



एकदन्त : गणेश

कश्यप की आज्ञा को शिरोधार्य करके परशुराम ने दक्षिणतट पर जाने का निर्णय तो किया किन्तु उससे पूर्व अपने परमाराध्य भगवान् शंकर के प्रति विनम्र आभार व्यक्त करने के लिए प्रस्थान किया। शिव परशुराम के आराध्य देव भी हैं और गुरु भी। कैलाश शिखर, पर जाते ही उन्होंने शिव के चरणारविन्द में प्रणामाञ्जलि करने के साथ-साथ पराम्बा भगवती पार्वती को प्रणति निवेदन तथा गुरुपुत्रों कार्तिकिय एवं गणेश के दर्शनों का उत्साह भी मन में था। कैलाशपुरी की वैभव सम्पदा का क्या कहना!! सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, विद्याधर, गुह्यक, भूत, प्रेत, वेताल, नन्दी एवं किम्पुरुषों के स्तवन से गुंजित उस दिव्य शंकराश्रम की परिधि में प्रवेश करते ही परशुराम भावुक हो गये। यहीं तो शंकर की सन्निधि में उन्होंने दिव्यशस्त्रास्त्रों का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। भगवान् शंकर के आवासस्थल के द्वार पर वीरभद्र अपने प्रधान सैनिकों के साथ खड़े थे। देवर्षि नारद तथा गणेश भी वहाँ विद्यमान थे। परशुधारी परशुराम ने उन सभी से सामान्य शिष्टाचार का व्यवहार और वार्तालाप करने के उपरान्त अन्दर जाने के लिए चरण बढ़ाये। तभी गणेश ने शान्तभाव से कहा कि पूज्य पिताजी अभी शयन कर रहे हैं। मैं थोड़ी देर के पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त करके आपको लेकर अन्दर चलूँगा। परशुराम ने कहा कि "जिन की कृपा से मैंने क्षत्रियों का विनाश किया है, कार्तवीर्य जैसे दुर्धर्ष वीर को यमपुर का पथिक बनाया है, उन अपने इष्ट, अपने गुरु के दर्शन अभी करूँगा। मैं शीघ्र ही अन्यत्र जाऊँगा।' यह कहते हुए परशुराम गणपति के सामने से निकल कर फिर आगे बढ़े। गणेश ने पुनः मधुरवाणी में निवेदन किया–

क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ शृणु भ्रातरिदं वचः।
रहः स्थल नियुक्तो न द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान्।।
स्त्रीसंयुक्तञ्च पुरुषं यः पश्यति नराधम।
विशेषतश्च पितरं गुरुं भूतपतिं द्विजः।।
स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तषु जन्मसु।
कामतोऽपि विमूढ़श्च सोऽन्धो भवति निश्चितम्।।

(ब्रह्मवैवर्त गणपति खण्ड ४२/११-१४)

"भैया! आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये एकान्त अन्तःपुर में आपका ऐसे जाना व्यावहारिक दृष्टि से उचित नहीं है। जो व्यक्ति किसी भी पुरुष को पत्नी सहित रहते हुए एकान्त में देखता है–विशेष रूप में पिता, अथवा गुरु को वह सात जन्म तक अपनी स्त्री से वियुक्त रहता है अथवा उसे सातजन्म पर्यन्त स्त्री का सान्निध्य प्राप्त नहीं होता। वह निश्चित रूप से अन्धा हो जाता है।"

गणेश की बात सुनकर भार्गव उसका उपहास करते हुए कठोरता के साथ बोले–

जगतां पितरौ तौ च पार्वती परमेश्वरौ।
पार्वती स्त्री पुमान् शम्भुरिति कैर्न निरुपितः।।

स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत्।
लज्जा लज्जामवाप्नोति तापं किं वा हुताशनः।।
(वही ४२/१९, २१, २२)

आप कैसी बातें कर रहे हैं! भगवती पार्वती एवं शंकर तो जगत के माता-पिता हैं। क्या वे सामान्य कोटि के स्त्री पुरुष हैं!! ऐसा निरूपण तो किसी ने भी नहीं किया है। स्तनन्धय (दूध पीने की अवस्था वाले शिशु) पुत्र के सामने माता-पिता को कोई लज्जा होती है क्या! क्या अग्नि को भी कोई ताप दे सकता है! क्या लज्जा को भी लज्जा होती है!! क्या सूर्य अपने ही तेज से दग्ध होता है! इसलिए आपकी बातों में कोई सार नहीं है। न ये कहीं श्रुति में पढ़ा है, न गुरुमुख से सुना है।

यह कहते हुए परशुराम पुनः पुनः हँसकर शीघ्रता के साथ अपने गुरु शंकर के पास अन्तःपुर में जाने को तत्पर हुए। परशुराम की बात से क्रुद्ध गणेश कहने लगे—निर्गुण, निर्लेप, निरंजन, महाविराट् के लिए आपकी बात उचित है, किन्तु वही जब सगुणरूप धारण करके साकार विग्रहवान् बनता है तो फिर सर्वशक्तिसमन्वित वह प्रभु सब भोगों को भोगता है—वह लज्जारहित कैसे हो सकता है? इसी भाँति जो पराम्बा भगवती 'लज्जा' रूप से सब में अवस्थित है वह भी जब सर्वशक्तिमती शैल पुत्री पार्वती के रूप में अवतरित होती है, साकार सगुण विग्रहवती होती है तो उसकी प्रकृति के लज्जा आदि गुण उसमें रहते ही हैं—वे कैसे जा सकते हैं! इसलिए आप थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए। इस प्रकार हठपूर्वक अन्दर न जाइये।

परशुराम फिर भी अपने परशु को घुमाते हुए निर्भयतापूर्वक अन्दर जाने लगे। गणेश ने फिर भी रोकने का जब प्रयास किया तो परशुराम ने अपने गुरु द्वारा प्रदत्त 'त्रैलोक्य विजय' नामक कवच का स्मरण किया साथ ही श्रीकृष्ण का ध्यान करके अमोघ परशु का प्रहार गणेश पर किया। गणेश ने प्रहार को बाँए दाँत पर रोकने का प्रयास किया, किन्तु रक्त से लिप्त दाँत टूट कर पृथ्वी पर गिर गया। कार्तिकेय, वीरभद्र आदि सभी हाहाकार करने लगे। भयंकर कोलाहल होने लगा। पृथिवी काँपने लगी। कैलाश पर स्थित सब व्यक्ति मूर्च्छित हो गये।

इसी उपद्रव के मध्य महादेव की निद्राभंग हुई। वे पार्वती के साथ तत्काल अन्तपुरः से बाहर आये। जब रक्त से लिप्त मुख और खण्डित दाँतवाले गणेश को देखा तो रोषाविष्ट पार्वती ने कहा—

अये राम महाभाग ब्रह्मवंशोऽसि पण्डितः।
पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्य योगिनां गुरोः।।
गुरवे दक्षिणान्दातुमुचितञ्च श्रुतौ श्रुतम्।
भग्नो दन्तस्तत्सुतस्य छेदयस्व च मस्तकम्।।
(ब्रह्मवैवर्त पु० गण० ४४/१८, २३)

अर्थात्—हे परशुराम आप परम तपस्वी जमदग्नि के पुत्र हो, ब्रह्मवंश में उत्पन्न हुए हो और योगियों के परम गुरु इन शंकर भगवान् के शिष्य हो। गुरु को गुरु दक्षिणा

देने का आदेश वेदों में लिखित प्राप्त होता है, आपने इनके पुत्र का दाँत तो तोड़ ही दिया है अब इसका मस्तक भी काट डालो।"

इतना कहकर भगवती पार्वती परशुराम को मारने को उद्यत हो गई। तभी भगवान् विष्णु दण्ड, छत्र धारण किये श्वेत वस्त्रधारी वामन ब्रह्मचारी के रूप में वहाँ प्रकट हुए। दिव्य ब्रह्मचारी को शंकर एवं पार्वती ने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। शंकर ने विनीत वाणी में कहा आज मेरा जीवन धन्य हो गया। मुझे श्रीकृष्ण की सेवा का ही ये फल प्राप्त हुआ है कि आप सदृश अतिथि के दर्शन हुए। जो व्यक्ति अतिथि की सेवा करता है मानो उसने सब देवताओं की पूजा की। जिसके सद्व्यवहार से अतिथि सन्तुष्ट होता है, उससे स्वयं हरि सन्तुष्ट हो जाते हैं। जिसके द्वार से अतिथि निराश जाता है वह व्यक्ति अपने पूर्व जन्मों के संचित पुण्यों से वंचित हो जाता है। भयंकर महापापों से भी बढ़कर पाप अतिथि सेवा न करने से प्राप्त होता है। आप आज्ञा दीजिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात्।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्।

(वही ४४/४७)

सुप्रसन्न विष्णु ने उत्तर दिया—मैं श्वेतद्वीप से आया हूँ। मैंने बहुत कोलाहल सुना। मैं कृष्णभक्त परशुराम की रक्षा के लिए आया हूँ। भगवती पार्वती को भी विष्णु ने कहा—हे देवि! कृपया मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुनिये "आपके लिये गणेश एवं कार्तिकेय के समान परशुराम भी है। इसके प्रति आपके एवं शंकर के स्नेह में कोई अन्तर नहीं है। यदि दो बालकों में कोई विवाद हो जाता है तो माता एक को ही दण्ड नहीं देती। परशुराम का गणेश से विवाद भाग्यदोष से ही हुआ है। भाग्य की बात कौन टाल सकता है! आपके पुत्र का नाम 'एकदन्त' वेदों में भी लिखा है। ये गणेश सब देवताओं से भी प्रथम पूज्य हैं। सामवेद में गणेश के आठ नाम विख्यात हैं। वे हैं—

गणेशमेकदन्तञ्च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्।।

(वही ४४/८५)

मैं स्वयं भी गणेश को प्रणाम करता हूँ। 'ग' ज्ञानार्थवाचक है और 'ण' निर्वाण वाचक है। इन दोनों के स्वामी परब्रह्म को ही गणेश कहते हैं—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्।।

(वही ४४/८७)

भगवान् विष्णु ने पार्वती को नीतियुक्तवचनों से शान्त करने के उपरान्त परशुराम से भी कहा कि गणेश का दाँत खण्डित करके तुमने उचित नहीं किया अतः मेरे द्वारा अभी बतलाये गये स्तोत्र से गणेश की स्तुति करें और काण्वशाखा में वर्णित स्तोत्र से जगद्धात्री पार्वती का भी स्तवन कीजिए। इनकी शक्ति बल से ही ब्रह्मा सृष्टि का निर्माण करते हैं, मैं पालन और शंकर संहार करते हैं।

वामन ब्रह्मचारी वेशधारी विष्णु के अन्तर्धान होने पर परशुराम ने पार्वती का श्रद्धापूर्वक स्तवन किया और भावविह्वल होकर गणेश की पूजा की। तब परशुराम भक्तिपूर्वक गौरीशंकर, कार्तिकेय तथा गणेश को बारम्बार प्रणाम करके उनकी आज्ञा प्राप्त करके अपने आश्रम की ओर लौट चले।

परशुराम आश्रम की व्यवस्था अपने शिष्यों को सौंप कर अपने पूर्वजों को दिये वचनानुसार क्षत्रियों के संहार से विरत हो गये और उनके पास जो भी स्वर्ण, धन सम्पत्ति थी वह ब्राह्मणों को दान कर दिया। यहाँ तक कि अनेकानेक नगर, ग्रामों से सुशोभित, समुद्रपर्यन्त विस्तृत पृथ्वी भी महर्षि कश्यप को प्रदान कर दी। कश्यप ने शान्तभाव से कहा—महामुने! अब आप मुझे दान की गई पृथ्वी पर निवास करने का विचार तो मर्यादापूर्ण स्वीकार न करेंगे, इसलिए आप अपने निवास के लिए कोई अन्य स्थान खोज लीजिए। परशुराम ने कश्यप को प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक प्रस्थान किया। वे सागर के किनारे पहुँचे। समुद्र ने परमत्यागी परशुराम का श्रद्धाभाव से स्वागत किया और उनके निवास के लिए स्थान खाली करके "शूर्पारक" देश का निर्माण किया। वर्तमान में यही क्षेत्र 'केरल' प्रदेश के नाम से विख्यात है। इसे "अपरान्त भूमि" के नाम से भी जाना जाता है।



शरणागत वत्सलता

शरणागत वत्सलता के उदाहरणों से भारतीय इतिहास ओत-प्रोत है। शिवि, दधीचि आदि अनेक महापुरुषों ने अपना शरीर तक भी शरणागत की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया था। परशुराम जहाँ दुर्धर्ष योद्धा थे वहाँ परदुःख कारता उनमें भरी हुई थी। महर्षि अगस्त्य ने टिट्टिभ के बालकों के त्राणार्थ समुद्र का पान कर लिया था। बादमें गंगाजल के द्वारा उसे भरा जाने लगा। जल भरने की प्रक्रिया में तटवर्ती अनेक प्रदेशों के साथ-साथ गोकर्ण नामक क्षेत्र भी जलमग्न हो गया। ऋषि मुनि 'त्राहि-त्राहि' पुकारते हुए महेन्द्राचल पर्वत पर तपोमग्न भगवान् परशुराम की शरण में पहुँचे। अभ्यागतों का यथोचित पाद्यार्घ्य से स्वागत करके परशुराम ने पधारने का कारण पूछा। अपनी व्यथा-कथा निवेदन करते हुए ऋषियों ने प्रार्थना की—

जामदग्न्य महाभाग! त्राहि नः शरणागतान्।
विष्णोरंशावतारोऽसि गोकर्णं मोचयार्णवात्।।
प्रभो सर्वसमर्थस्त्वं शस्त्रास्त्र बल मण्डितः।
शक्तः समीहितं कर्तुं शापादपि शरादपि।।

"हे जमदग्निपुत्र महाभाग! हम आपके शरणागत हैं। हमारी रक्षा कीजिए। आप नारायण के अंशावतार हैं। कृपा करके गोकर्णक्षेत्र को सागर से मुक्त कराइये। हे प्रभो! शस्त्रास्त्र बल से संयुक्त आप कुछ भी करने में समर्थ हैं। आप शस्त्र से भी और शाप से भी जो चाहें कर सकते हैं।"

परशुराम ने शान्त वाणी में उत्तर दिया—"मैंने शान्त रहने का व्रत ले लिया है और आजीवन शस्त्र ग्रहण न करने का वचन अपने पितरों को दिया है।"

ऋषियों ने विनम्रतापूर्वक जिज्ञासा की "देव! आपने किस कारण ऐसा वचन दिया?"

परशुराम ने मधुर स्वर में बतलाया—हे ऋषिवरों! अपने पितृचरण महर्षि जमदग्नि के कार्तवीर्य सहस्रार्जुन द्वारा नृशंसतापूर्वक मारे जाने पर मैंने दुष्ट क्षत्रियों को इक्कीस बार मारा, यहाँ तक कि गर्भस्थ शिशुओं ने जब जन्म लिया तो मैंने उनका भी संहार कर दिया। उस समय आकाशवाणी हुई।—"पुत्र परशुराम! इस हत्या के काम से अब निवृत्त हो जाओ। भला बारम्बार इन क्षत्रियों के प्राण लेने में तुम्हें कौन सा लाभ दृष्टिगोचर होता है।" तभी मेरे पितामह ऋचीक प्रकट हो मुझे समझाने लगे "वत्स! अब यह काम छोड़ दो, बहुत हो चुका। क्षत्रियों को न मारो। तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे हाथ से राजाओं का वध अब उचित नहीं है। इस विषय में हम तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुना रहे हैं, उसे सुनकर तदनुकूल आचारण करो।"

इतना कहकर पितामह ऋचीक ने सुनाया। पूर्वकाल में अलर्क नाम के एक प्रसिद्ध राजर्षि थे, जो बड़े तपस्वी, धर्मज्ञ, सत्यवादी, महात्मा और दृढ़ प्रतिज्ञ थे। उन्होंने अपने धनुष की सहायता से समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को जीतकर अत्यन्त दुष्कर पराक्रम कर दिखाया

था। इसके पश्चात् उनका मन सूक्ष्म तत्त्व की खोज में लगा। वे वृक्ष के नीचे जा बैठे और सूक्ष्म तत्त्व की खोज में इस प्रकार विचार करने लगे।

अलर्क कहने लगे—मुझे मन से ही बल प्राप्त हुआ है, अतः वही सबसे प्रबल है। मन को जीत लेने पर ही मुझे स्थायी विजय प्राप्त हो सकती है। मैं इन्द्रिय रूप शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ, इसलिए बाहर के शत्रुओं पर हमला न करके इन भीतरी शत्रुओं को ही अपन बाणों का निशाना बनाऊंगा। यह मन चंचलता के कारण सभी मनुष्यों से तरह-तरह के कर्म कराता रहता है, अतः अब मैं मन पर ही तीखे बाणों का प्रहार करूँगा।

मन बोला—अलर्क! तुम्हारे ये बाण मुझे किसी तरह नहीं बींध सकते। यदि इन्हें चलाओगे तो ये तुम्हारे ही मर्म स्थानों को चीर डालेंगे और उस अवस्था में तुम्हारी ही मृत्यु होगी, अतः और किसी बाण का विचार करो, तुम मुझे मार सकोगे। यह सुनकर अलर्क ने थोड़ी देर तक विचार किया, इसके बाद वे नासिका को लक्ष्य करके बोले—'मेरी यह नासिका अनेकों प्रकार की सुगंधियों का अनुभव करके भी फिर उन्हीं की इच्छा करती है, इसलिए इसी को तीखे बाणों से मार डालूँगा।'

नासिका बोली—अलर्क! ये बाण मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इनसे तो तुम्हारे ही मर्म विदीर्ण होंगे और मरोगे, अतः मुझे मारने के लिए और तरह के बाणों की तजबीज करो।

अब अलर्क कुछ देर विचार करने के पश्चात् जिह्वा को लक्ष्य करके कहने लगे—'यह जीभ स्वादिष्ट रसों का उपभोग करके फिर उन्हें ही पाना चाहती है। इसलिए अब इसी के ऊपर अपने तीखे सायकों का प्रहार करूँगा।'

जिह्वा बोली—अलर्क ये बाण मुझे नहीं छेद सकते! ये तो तुम्हारे ही मर्म स्थानों को बींध कर तुम्हें ही मौत के घाट उतारेंगे; अतः दूसरे प्रकार के बाणों का प्रबन्ध सोचो, जिनकी तुम्हें मुझे भी मारने में सहायता प्राप्त होगी।

यह सुनकर अलर्क कुछ देर तक सोचते-विचारते रहे, फिर त्वचा पर कुपित होकर बोले—'यह त्वचा नाना प्रकार के स्पर्शों का अनुभव करके फिर उन्हीं की अभिलाषा किया करती है, अतः नाना प्रकार के बाणों से मारकर इसे विदीर्ण कर डालूँगा।'

त्वचा बोली—अलर्क! ये बाण मुझे अपना निशाना नहीं बना सकते। ये तो तुम्हारा ही मर्म विदीर्ण करेंगे और मर्म विदीर्ण होने पर तुम्हीं मौत के मुँह में पड़ोगे। मुझे मारने के लिए तो दूसरी तरह के बाणों की व्यवस्था सोचो।

त्वचा की बात सुनकर अलर्कने थोड़ी देर विचार किया; फिर नेत्र को सुनाते हुए कहा—'यह आंख भी अनेकों सुन्दर-सुन्दर रूपों का दर्शन करके पुनः उन्हीं को देखना चाहती है, अतः इसे भी अपने तीखे तीरों का निशाना बनाऊँगा।'

आंख बोली—अलर्क! ये बाण मुझे नहीं छेद सकते, तुम्हारे ही मर्म स्थानों को बींध डालेंगे और मर्म विदीर्ण हो जाने पर तुम्हें ही जीवन से हाथ धोना पड़ेगा, अतः दूसरे प्रकार के सायकों का प्रबन्ध सोचो, जिनकी सहायता से तुम मुझे भी मार सकोगे।

तब अलर्क ने पुनः सोचकर कहा—'यह बुद्धि अपनी प्रज्ञा-शक्ति से अनेकों प्रकार का निश्चय करती है, अतः इसी के ऊपर तीक्ष्ण सायकों का प्रहार करूँगा।'

बुद्धि ने कहा—अलर्क! ये बाण मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकते। इससे तुम्हारा ही मर्म विदीर्ण होगा और तुम्हीं मरोगे। जिनकी सहायता से मुझे मार सकोगे, वे बाण तो कोई और ही हैं। उनके विषय में विचार करो।

तदनन्तर अलर्क ने उसी पेड़ के नीचे बैठकर घोर तपस्या की; किन्तु उससे मन, बुद्धि सहित इन्द्रियों को मारने योग्य किसी उत्तम बाण का पता न लगा। तब वे एकाग्रचित्त होकर विचार करने लगे। बहुत दिनों तक निरन्तर सोचने-विचारने के बाद उन्हें योग से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी साधन नहीं प्रतीत हुआ। अब वे मन को एकाग्र करके स्थिर आसन से बैठ गये और ध्यान योग का साधन करने लगे। इस एक ही बाण से मारकर उन्होंने समस्त इन्द्रियों को सहसा परास्त कर दिया। वे ध्यान योग के द्वारा आत्मा में प्रवेश करके परा सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त कर गये। उस सफलता से राजर्षि अलर्क को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने इस गाथा का गान किया—'अहो! बड़े कष्ट की बात है कि अब तक मैं बाहरी कामों में लगा रहा और भोगों की तृष्णा से आबद्ध होकर राज्य की उपासना करता रहा। 'ध्यान योग से बढ़कर दूसरा कोई सुख का साधन नहीं है' यह बात तो मुझे बहुत पीछे मालूम हुई है'।

पितामहों ने कहा—"बेटा परशुराम! इन सब बातों को अच्छी तरह समझकर तुम क्षत्रियों का नाश न करो। घोर तपस्या में लग जाओ, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा।"

परशुराम ने पूर्वोक्त प्रसंग ऋषियों को सुनाने के उपरान्त कहा कि मैं तब से यहाँ एकान्त में साधनारत हूँ। फिर भी समुद्र ने मेरी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए यदि इस परम पावन गोकर्ण क्षेत्र को खाली नहीं किया तो मैं इस महान् और परोपकार से ओतप्रोत सत्कार्य की सिद्धि के लिए—जो धर्मसम्मत विधान है पुनः शस्त्र धारण कर लूँगा।

यह कह कर भगवान परशुराम सह्याद्रि की गिरिमाला को पार करके ऋषि मुनियों के साथ समुद्र के किनारे आ गये। वहाँ आसन पर विराजमान होकर मधुरवाणी में जलाधिष्ठाता वरुण की स्तुति करने लगे—

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते
यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशं
समान आयुः प्रमोषीः।।१।।
नमो नमस्ते स्फटिक प्रभाय,
सुश्वेतहाराय समंगलाय
सुपाशहस्ताय झषासनाय
जलाधिनाथाय नमोनमस्ते।।२।।
पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनी जीवनायक!
अनुकम्पय मां देव त्राहि नः शरणागतान्।।

पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर भी कोई परिणाम न निकला। तब भार्गव परशुराम ने विचार किया 'आर्जवं हि कुटिलेसु न नीतिः।' अब विनय से काम नहीं चलेगा। अपने पूर्व पुरुषों का, परमगुरु शंकर भगवान् का ध्यान करके परशुराम ने समुद्र को सुखाने के लिए धनुष पर अग्निबाण चढ़ाया। शरणागत जनों की रक्षा के लिए वे शर सन्धान को तत्पर हो गये। शरसन्धान मात्र से ही समुद्र विचलित हो गया। भीषण ज्वालमालाएँ उठने लगी। जल जीव मत्स्य, कच्छप, सर्पादि व्याकुल होकर आर्तनाद करने लगे। परशुराम के भीष्म रूप को देखकर प्रलय की आशंका से मानव-दानव-देवों में हलचल मच गई। मुनिजन परशुराम की स्तुति करने लगे। सर्वत्र 'त्राहि-त्राहि' की ध्वनि गूँज रही थी। जलाधिष्ठाता वरुण देव भय से कम्पित होकर करबद्ध मुद्रा में अपने अपराध की क्षमा याचना के लिए भगवान् परशुराम के चरणों में नत हो गये।

परशुराम ने पुनः शान्तवृत्ति धारण करते हुए गम्भीर स्वर में कहा—वरुण देव! आप ऋषिजन सेवित इस परम पावन गोकर्ण द्वीप से अपना जलप्रवाह हटा लीजिये, जिससे पूर्ववत् यह क्षेत्र तपस्विजन के आवास योग्य बन सके। वरुण ने समुद्र की उस अपारजलराशी को वहाँ से हटा लिया। हर्षित ऋषि मुनिजन परशुराम की शरणागत वत्सलता और शूरवीरता की प्रशंसा करते हुए स्तुति गान करने लगे—

यन्नामग्रहणात्प्राणी प्राप्नुयान्न भवापदम्।
यस्य पादार्चनात्सिद्धिर्भार्गवाय नमो नमः।।
यस्मादेतज्ञगत्सर्वं जायते यत्र लीलया।
स्थितिं प्राप्नोति देवाय रेणुका सूनवे नमः।।



गुरुदेव परब्रह्म

पिनाकपाणी शिव के निष्ठावान् शिष्य भगवान् परशुराम जहाँ सुयोग्य शिष्य थे वहाँ आदर्श गुरु भी थे। उनकी सन्निधि में रहकर जिन अन्तेवासियों ने भी ज्ञानार्जन किया उनके प्रति परशुराम का वात्सल्यभाव प्रेरणादायक रहा। श्रद्धा तथा सेवा भावना से गुरु शुश्रूषा करने वाला शिष्य अभीष्ट शिक्षा प्राप्त करता है। शस्त्र एवं शास्त्र में पारंगत परशुराम उत्कृष्ट कोटि के गुरु थे। अपने पितृचरण जमदग्नि के समान परशुराम भी वेद, वेदान्त, नियम, आगम, पुराणों की आध्यात्मिक विद्या के साथ-साथ शिष्यों को शस्त्रास्त्र संचालन, प्रक्षेपण और उपसंहार की शिक्षा भी प्रदान करते थे। वेदों के पारंगत होने के साथ वे धनुर्वेद के विश्वविश्रुत वेत्ता थे। उनके अनेक शिष्यों में तीन शिष्य भारतीय इतिहास के अग्रणी वीरों में परिगणित होते हैं। संयोग से तीनों ही महाभारत के यद्ध में दुर्योधन के पक्ष में रहे।

परशुराम का अपने शिष्यों को स्पष्ट निर्देश होता था कि समाज की व्यवस्था तथा स्वस्थ गतिविधियों के संचालन के लिए यदि अपरिहार्य हो तभी शस्त्र उठाना चाहिए। धर्म की रक्षा के लिए शस्त्रग्रहण आवश्यक है—

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनाञ्च वर्णानां विप्लवे कालकारिते।।

अपने परशुधारण को इसीलिए मानवता का पोषक मानते थे। वे जीवन में वीरता की महिमा के पक्षधर थे—

परशु और तप ये दोनों वीरों के ही होते शृंगार,
क्लीब न तो तप ही करता है न उठा सकता तलवार।
तप से मनुज दिव्य बनता है षड्विकार से लड़ता है,
तन की समरभूमि में लेकिन काम खड्ग ही करता है।।



परशुराम की शिष्य परम्परा में भीष्म

महाभारत में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि गंगापुत्र भीष्म परशुराम के अप्रतिम शिष्य थे। शस्त्रास्त्रों के संचालन की शिक्षा भीष्म ने परशुराम की सन्निधि में रहकर प्राप्त की थी। अग्नितत्त्व के पारखी भृगु के सभी वंशज प्रक्षेपास्त्रों की वैज्ञानिक प्रक्रिया के विशेषज्ञ थे। इनमें भी परशुराम ने ताण्डवकर्त्ता, सृष्टिकर्त्ता पिनाकपाणी शंकर से युद्ध विद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। इसलिए न केवल अपने युग के अपितु सृष्टि के अनुपमेय शस्त्र और शास्त्र निष्णात परशुराम ने भीष्म को दुर्धर्ष वीर बनाया, विभिन्न अस्त्र के प्रक्षेपण और उपसंहार की शिक्षा उन्हें प्रदान की।

भीष्म जब, काशी नरेश की पुत्रियों अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को स्वयंवर स्थल से हरण करके लाये थे और अपने अनुज विचित्रवीर्य के साथ विवाह करने का आदेश उन्हें दिया था तो अम्बा ने यह आदेश न मानते हुए अनुरोध किया था कि वे (भीष्म) स्वयं उससे विवाह करें क्यों कि वही हरण करके लाये हैं। भीष्म ने अपनी ब्रह्मचर्य निर्वाह की प्रतिज्ञा का संकेत देकर विवशता व्यक्त की, तब अम्बा भीष्म के गुरु परशुराम की शरण में गई। परशुराम ने भीष्म को समझाया था, परन्तु पितृभक्त भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा का संकेत देकर विवाह करने से निषेध कर दिया। इस बात पर गुरुशिष्य का युद्ध भी हुआ। अन्त में परशुराम स्थिति को समझकर वापिस लौट गये।

कहने का तात्पर्य यह है कि भीष्म परशुराम के शिष्यों में प्रथम गण्य हैं।

भीष्म के विषय में यह उल्लेख मिलता है–

त्रिःसप्तकृत्वो जगजीपतीनाम्,
हन्ता गुरुर्यस्य स जामदग्न्यः।।



द्रोणाचार्य को ब्रह्मास्त्र शिक्षण

महर्षि भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य भी परशुराम के विश्वविश्रुत शिष्य थे जिनसे कौरव पाण्डवों ने धनुर्विद्या के साथ-साथ सभी शस्त्रास्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त किया था। द्रोण ने भरद्वाज से वेदवेदाङ्गों का अध्ययन किया और अग्निवेश से आग्नेयास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। इन्हीं दिनों द्रोण ने सुना कि परशुराम ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दान कर रहे हैं। उनके अपूर्व शस्त्रास्त्रज्ञान से द्रोण परिचित थे। वे महेन्द्राचल पर्वत पर विराजमान भृगुनन्दन की सन्निधि में पहुँचे। परशुराम उस समय महेन्द्राचल का परित्याग करके अन्यत्र जाने को प्रस्तुत थे। उनके चरणों में सविनय साष्टांग प्रणाम करते हुए द्रोण ने अपना परिचय दिया और कहा कि महर्षि अंगिरा के गोत्र में भरद्वाज ऋषि से उत्पन्न मैं उनका आयोनिज पुत्र हूँ। मैं एक विशेष अभिलाषा से आपकी शरण में आया हूँ—

वनं तु प्रस्थितं रामं भारद्वाजस्तदाब्रवीत्।
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजर्षभम्।।
(महाभारत, आदिपर्व १२१/१७)

"मैं ऐसा धन आपसे चाहता हूँ, जिसका कभी अन्त न हो! हे तपोधन! आप सर्व समर्थ हैं। मैं आपका शरणागत हूँ।" यह कहकर द्रोण ने परशुराम के चरणकमलों में पुनः प्रणाम किया।

परशुराम ने शान्त गम्भीर स्वर में कहा—

हिरण्यं मम यच्चान्यद् वसु किंचन विद्यते।
ब्राह्मणेभ्यो मया दत्तं सर्वमेव तपोधन।।
तथैवेयं धरादेवी सागरान्ता सपत्तना।
कश्यपाय मया दत्ता कृत्स्ना नगरमालिनी।।
शरीरमात्रमेवाद्य मयेदमवशेषितम्।
अस्त्राणि च महार्हाणि शस्त्राणि विविधानि च।
वृणीष्व किं प्रयच्छामि तुभ्यं द्रोण वदाशु तत्।।
(वही १२१/१८-२०)

अर्थात हे तपोनिधान द्रोण! मेरे पास सुवर्ण और अन्य जो भी धन था, वह सब ब्राह्मणों को दे चुका हूँ, अतः मेरे पास कुछ शेष नहीं है। मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी भी कश्यप महर्षि को दे दी है। अब तो मेरे पास केवल मूल्यवान विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र और मेरा यह शरीर ही शेष रह गया है। आप शीघ्र कहिये, आप क्या चाहते हैं?

द्रोण ने विनत भाव से याचना के स्वर में कहा—

अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव!
सप्रयोग रहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः।।

(वही १२१/२१)

"पूज्यवर भार्गव श्रेष्ठ! आप कृपा करके मुझे प्रयोग, उपसंहार तथा रहस्यों के साथ सम्पूर्ण अस्त्रों को विधिवत् प्रदान कर अनुगृहीत कीजिये।"

तब परशुराम ने 'तथास्तु' कहते हुए सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रों का रहस्य और नियमों के सहित धनुर्वेद का सम्पूर्ण ज्ञान अपने प्रिय शिष्य भूत द्रोण को प्रदान किया।

महाभारत में द्रोणाचार्य का शौर्य, ओज, तप, साधना से ओत-प्रोत व्यक्तित्व परशुराम की सर्वस्वदायी ब्राह्मणपरम्परा का सत्परिणाम है।



प्रिय शिष्य कर्ण

महाभारत के परमवीर महारथियों में परिगणित कर्ण भी परशुराम के प्रिय शिष्यों में उल्लेखनीय पात्र हैं। गुरु की कृपा और वत्सलता शिष्य के लिए वरदान बन जाती है। कर्ण ने गुरु द्रोणाचार्य की सन्निधि में रहकर धनुर्विद्या का अभ्यास किया था। बाल्यावस्था से ही वह युधिष्ठिर की बुद्धिमत्ता, भीमसेन की शारीरिक शक्ति, अर्जुन की धनुर्विद्या में पारंगतता और नकुल तथा सहदेव की विनयशीलता से ईर्ष्यादग्ध रहता था। अर्जुन के कौशल को देखकर उसने द्रोणचार्य के चरणों में प्रार्थना की—"गुरुदेव! मैं ब्रह्मास्त्र को छोड़ने और लौटाने की विद्या सीखना चाहता हूँ।" कर्ण की अर्जुन के प्रति ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्वी प्रवृत्ति से द्रोणाचार्य सुपरिचित थे। साथ ही ब्रह्मास्त्र की पात्रता के परम्परागत नियमों और विधि विधान की व्यवस्था का भी उन्हें ध्यान था। तनिक संकोचपूर्वक उन्होंने कहा—"प्रिय कर्ण! शास्त्रोक्त विधि के अनुसार ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाला ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ही ब्रह्मास्त्र ग्रहण करने का अधिकारी है, दूसरा नहीं।"

इतना सुनते ही कर्ण ने द्रोणाचार्य को प्रणाम किया और "जैसी आपकी इच्छा" कहकर चल दिया। वह महेन्द्र पर्वत पर अवस्थित भगवान् परशुराम के आश्रम में पहुँचा। वहाँ का स्वरूप देखकर कर्ण हर्षमिश्रित विस्मय से स्तब्ध रह गया। परशुराम की कुटिया का दृश्य था भी ऐसा ही—

अजिन दर्भ पालाश कमण्डलु एक ओर तप कें साधन,
एक ओर है टँगे धनुष तूणीर तीर बरछे भीषण।
चमक रहा तृण-कुटी-द्वार पर एक परशु आभाशाली,
लौह-दण्डपर जड़ित पड़ा हो मानो अर्ध अंशुमाली।।
श्रद्धा बढ़ती अजिन दर्भ पर परशु देख मन डरता है,
युद्ध शिविर या तपोभूमि यह समझ नहीं कुछ पड़ता है।
हवन कुण्ड जिसका है यह, उसके क्या हैं ये धनुष कुठार?
जिस मुनि की यह स्रुवा उसी की कैसे हो सकती तलवार?

कर्ण भाव विह्वल हो गया। वह समझ गया कि सृष्टि के अतुलनीय व्यक्तित्व परशुराम की ही यह कुटिया है—

मुख में वेद पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार विमल,
शाप और शर दोनों ही हैं जिस महान् ऋषि के सम्बल।
यह कुटीर है उसी महामुनि परशुराम बलशाली का,
भृगु के परम पुनीत वंशधर व्रती, वीर प्रणशाली का।।

कर्ण ने परशुराम के निकट जाकर गुरुबुद्धि से उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और भृगुवंशी ब्राह्मण के रूप में अपना परिचय दिया। शिष्यभाव से उनकी चरण-शरण की याचना की। परशुराम ने गोत्र आदि पूछकर उसे सहर्ष शिष्य के रूप में स्वीकार किया।

कर्ण महेन्द्र पर्वत पर रहकर विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्र का अभ्यास करने लगा। कर्ण की गुरु शुश्रूषा से परशुराम अत्यन्त प्रसन्न थे–

कर्णस्य बाहुवीर्येण प्रश्रयेण दमेन च।
तुतोष भृगुशार्दूलो गुरुशुश्रूषया तथा।।

(महाभारत, शान्तिपर्व ३/२)

उन्होंने प्रयोग तथा उपसंहार सहित सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र विद्या कर्ण को विधिवत् सिखा दी। कर्ण के प्रति उनका वात्सल्यभाव देखते ही बनता था। रौद्ररस की साक्षात् प्रतिमा माने जाने वाले परशुराम गुरु के रूप में परम कारुणिक और स्नेहरस धारा के सागर बने हुए थे। कर्ण को वे प्रायः कहा करते थे–

कहते थे ओ वत्स! पुष्टिकर भोग न तू यदि खायेगा,
मेरे शिक्षण की कठोरता को कैसे सह पायेगा?
अनुगामी यदि बना कहीं तू खानपान में भी मेरा,
सूख जायगा लहू बचेगा हड्डी भर ढाँचा तेरा।।

एक दिन परशुराम कर्ण के साथ अपने आश्रम के निकट घूम रहे थे। उपवास आदि से कृश शरीर वाले परशुराम को थकावट के कारण नींद सताने लगी। वे कर्ण के ऊपर पूरा विश्वास करते थे–अपार स्नेह रखते थे इस लिए उसी की गोदी में सिर रखकर सो गये। तभी माँस, मज्जा, रुधिर आदि का आहार करने वाला एक भयंकर कीड़ा, जो बड़ा तीखा डंक मारता था, कर्ण के पास आया और उसकी जाँघ में काटने लगा। काटते-काटते उसने छेदकर डाला और रक्त पीने लगा किन्तु कर्ण असह्य पीड़ा को धैर्य पूर्वक सहनकर इस चेष्टा में रहा कि गुरुदेव परशुराम की निद्रा भंग न हो। वह कीड़े की उपेक्षा करता रहा।

सन्दंश्यमानोऽपि तथा कृमिणा तेन भारत।
गुरु प्रबोधशंकी च तमुपैक्षत सूतजः।।

(वही ३/६)

कर्ण के शरीर से प्रवाहित होने वाले उष्ण रक्त की धारा से जब परशुराम का शरीर भीगने लगा तो वे सहसा जाग उठे और शंकित होकर बोले–'अरे तू यह क्या कर रहा है?' कर्ण ने कीड़े के द्वारा काटने की बात बतला दी। ज्यों ही परशुराम ने कीट की ओर दृष्टिपात किया, उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इस विचित्र घटना से कर्ण और परशुराम विस्मित हो गये। इतने में ही एक भयंकर राक्षस आकाश में खड़ा दिखाई दिया। वह दोनों हाथ जोड़कर बोला–

मोक्षितो नरकादस्मि भवता मुनिसत्तम।
भद्रं च तेऽस्तु नन्दिश्च प्रियं मे भवता कृतम्।।

(वही ३/११)

हे मुनि प्रवर! आपने मुझे नरक से मुक्त करके मेरा बहुत ही प्रिय कार्य किया है। आपका भला हो, मैं संतुष्ट हूँ।

परशुराम ने पूछा—अरे! तुम कौन हो, नरक में कैसे पड़े? राक्षस ने उत्तर दिया—तात! सतयुग में मैं गृत्स नाम का क्रूर राक्षस था। एक दिन मैं आपके पूर्व पितामह भृगु के आश्रम में गया और वहाँ महर्षि भृगु की प्राणप्रिया पत्नी का बलपूर्वक अपहरण करने का प्रयास करने लगा। क्रोधित ऋषि ने शाप दिया कि अरे! पापिष्ठ, तू महाघोर कीड़ा होकर सदा मलमूत्र, रुधिर और माँसभोजी होगा। मेरे बारम्बार प्रार्थना करने पर कि ब्रह्मन्! इस शाप का अन्त कभी तो होना चाहिए। भृगु बोले "मेरे कुल में राम नाम का जो महापुरुष जन्म लेगा, उसके दर्शन से तू शाप से छूटेगा।" यह प्रसंग सुनाने के उपरान्त वह महान् असुर परशुराम जी को प्रणाम करके चला गया।

अब परशुराम ने क्रुद्ध होकर कर्ण से कहा—""सच-सच बतला तू कौन है?""

दांत पीस आँखे तरेरकर बोले—"कौन छली है तू"
ब्राह्मण है या और किसी अभिजन का पुत्र बली है तू?"

मुझे प्रतीत होता है कि तू क्षत्रिय है। इतना धैर्य क्षत्रिय में ही हो सकता है—अरे मूढ़! सच बतला।

तू अवश्य क्षत्रिय है पापी बता न तो फल पायेगा।
परशुराम के कठिन शाप से अभी भस्म हो जायेगा।।

कर्ण ने रुद्धकण्ठ से रोते-रोते कहा—गुरुदेव! मैं जानता था कि आप ब्राह्मण को ही शस्त्रास्त्र विद्या की शिक्षा देते हैं। मैं सूतपुत्र कर्ण हूँ। मुझे क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। मेरी प्रबल अभिलाषा थी कि मैं आपका शिष्य बनूँ।

बड़ा लोभ था बनूँ शिष्य मैं कार्तवीर्य के जेता का,
तपोदीप्त शूरमा विश्व के नूतन धर्म प्रणेता का।
पर शंका थी मुझे सत्य का पता अगर पा जायेंगे,
महाराज मुझ सूतपुत्र को कुछ भी नहीं सिखायेंगे।

वास्तव में छल से सम्मान प्राप्त करना पाप है, अनीति है, मैं लज्जा से गड़ा जा रहा हूँ। मैं बिना मारे मरा जाता हूँ। परन्तु मैं परशुराम का शिष्य हूँ, इसलिए जीवनदान नहीं माँगूँगा। आप भले ही शाप दे दीजिए, परन्तु अपने चरण कमलों में प्राण देने दीजिए। मैं प्रस्तुत हूँ—

"लिपट गया गुरु के चरणों से विकल कर्ण इतना कहकर,
दो कणिकाएँ गिरी अश्रु की गुरु की आँखों से बहकर।
बोले—"हाय कर्ण तू ही प्रतिभट अर्जुन का नामी है,
निश्छल सखा धार्तराष्ट्रों का विश्वविजय का कामी है।।

देखे अगणित शिष्य द्रोण को भी करतब कुछ सिखलाया,
पर, तुझ सा जिज्ञासु आज तक कभी नहीं मैंने पाया।"

वत्सलता, करुणा, दया, क्रोध, आवेश एवं असमंजस से घिरे परशुराम ने गम्भीर स्वर में कहा—मैंने तुझे अपने पुत्र के समान मान लिया था कर्ण! तूने मुझे छला!!

यस्मान्मिथ्योपचरितो अस्त्रलोभादिह त्वया।
तस्मादेतद्धि ते मूढ़ ब्रह्मास्त्रं प्रतिभास्यति।।
अब्राह्मणे हि न ब्रह्म ध्रुवं तिष्ठेत्कदाचन।।

(वही ३/३०-३१)

परशुराम के शिष्यों में कर्ण ने उनसे शस्त्रास्त्र की शिक्षा तो ग्रहण की किन्तु छल और असत्य का आश्रय लेकर। अपने सिद्धान्त का पालन करते हुए भार्गव परशुराम ने शाप दिया—"मूर्ख तूने ब्रह्मास्त्र के लोभ से असत्यभाषण करके मेरे साथ कपट किया है, इसलिए जब तू संग्राम में अपने समान योद्धा से युद्ध करेगा तो तेरी मृत्यु निकट आ जायेगी उस समय तुझे मेरे दिये हुए ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं रहेगा।"

परशुराम ने यह कटु अनुभव किया था कि ब्राह्मण की कौन सुनता है! क्षत्रिय अपनी राज्यलिप्सा के वशीभूत होकर युद्ध करते हैं।

स्वयं भोगों में निमग्न होकर के ज्ञानी, ध्यानी ब्राह्मणों का अपमान कर देते हैं। ब्राह्मण की बात कौन सुनता है!! मानवता की रक्षा की चिन्ता किसे होती है। अपना-अपमान सहन करके भी मनुजता की चिन्ता ब्राह्मण करता है। इसलिए समय पड़ने पर शस्त्रास्त्र ग्रहण करना और ज्ञान का प्रसार करना ब्राह्मण के लिए आवश्यक है। यही विचार कर वे ब्राह्मण को ही शस्त्र विद्या सिखाते थे—

वीर नहीं है जो कि शत्रु पर जब भी खड्ग उठाता है,
मानवता के महागुणों की सत्ता भूला न जाता है।
सीमित जो रख सके खड्ग को पास उसी को आने दो,
विप्र जाति के सिवा किसी को मत तलवार उठाने दो।।



परशुराम से सम्बद्ध लोकमान्यता

वर्तमान के सन्दर्भ में

परमपराक्रमी परशुराम की लोकमान्यता का वर्तमान स्वरूप रामलीलाओं में आक्षेपप्रद सा प्रतीत होता है। जिन हाथों में रामलीला का मंचन है वे उसे और अधिक विकृत प्रदर्शित करते हैं। अतिनाटकीयता और तुलसीदास की कल्पना को आधार बनाकर भार्गव परशुराम को जनकपुरी में दशरथनन्दन राम के द्वारा शिवधनुष भंग होने के पश्चात् लक्ष्मण के साथ जो विवाद दिखाया जाता है और परशुराम के साथ जो अनर्गल बातें की जाती हैं उनका संकेत तक भी प्राचीन आर्ष ग्रंथों वाल्मीकीय रामायण, पुराणवाङ्मय और महाभारत आदि में उपलब्ध नहीं होता। वाल्मीकीय रामायण में, विवाहोपरान्त राम वर यात्रा के साथ जब अयोध्या लौट रहे होते हैं, तक राम के साथ संवाद होता है न कि लक्ष्मण के साथ। मार्ग में अचानक कोलाहल, पक्षियों का कलरव, मृगों का इधर-उधर दौड़ भाग देखकर महाराजा दशरथ वसिष्ठ से पूछते हैं महाराज! ये क्या हो रहा है। वसिष्ठ कुछ उत्तर दें और इस प्रकृति-परिवर्तन का कारण बतलायें इससे पूर्व ही तीव्र वायु चलने लगी, वृक्ष गिरने लगे, सूर्य अन्धकार से व्याप्त होने लगा। और पृथ्वी धीमे-धीमें काँपने लगी। तभी विशाल शरीर वाले मानो कैलाश पर्वत ही हों—परमतेजस्वी, परशु तथा धनुष को कन्धे पर धारण किये हुए भार्गववंशावतंस परशुराम वहाँ पधारे। सभी ऋषि मुनि पाद्य-अर्घ्य और आचमीनय लेकर उनका स्वागत करने को तत्पर हो गये। परशुराम ने पूजा स्वीकार की और राम से कहा—

राम दाशरथे वीर वीर्यन्ते श्रूयतेऽद्भुतम्।
धनुषोभेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्।।

(वाल्मीकि रामा० बाल० ७५/१)

हे राम! तुम्हारे पराक्रम के विषय में और धनुष-भंग के विषय में मैंने अद्भुत बातें सुनी हैं। मैं तुम्हारे पराक्रम को देखना चाहता हूँ। ये कहते हुए उन्होंने वैष्णव धनुष राम को दिया। राम ने उसे सरलता से चढ़ा दिया। तब परशुराम प्रसन्न भाव से महेन्द्राचल पर्वत पर चले गये।

महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में इसी भाँति का वर्णन किया है वरयात्रा के लौटने के समय ही राम और परशुराम की भेंट होती है। दशरथनन्दन राम ने जब शिवधनुष को भंग किया तो मानो भार्गव परशुराम को सूचित कर दिया कि क्षत्रियों ने फिर शिर उठाना प्रारम्भ कर दिया है—

भज्यमानमतिमात्र कर्षणा-
त्तेन वज्रपरशुस्वनं धनुः।
भार्गवाय दृढ़ मन्यवे पुनः
क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयन्।। (रघु० ११/४६)

शिव धनुष भंग की सूचना परशुराम तक पहुँच गई थी। तब परशुराम उसी दिशा

की ओर चल पड़े जिधरसे राम एवं उनके भाइयों की वर यात्रा अयोध्या वापिस आ रही थी। परशुराम के आगमन का ओजपूर्ण वर्णन कालिदास ने किया है। उनके आते ही सब दिशाएँ बाज पक्षी के, पवन से हिलते धूसर, रूखे बालों से प्रतीत हो रही थी, सान्ध्य कालीन लाल मेघों से रुधिर लिप्त वस्त्रों वाली प्रतीत हो रही थी। सूर्य की ओर मुख करके सियारिनें जोर-जोर से रो रही थी। चारों ओर भय का साम्राज्य व्याप्त था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो शृगाल पत्नियाँ क्षत्रियों के रक्त से पितृतर्पण करने वाले भार्गव को बुला रही थी।

राजा दशरथ ने कुलगुरु वसिष्ठ से शान्ति का उपाय पूछा अपशकुन शमन विशेषज्ञ वसिष्ठ ने मुसकाते हुए कहा—"राजन्! चिन्ता मत कीजिए , दुःखी न हो। सब ठीक हो जायेगा। जो हो रहा है, उसका परिणाम आप के लिए सुख प्रद रहेगा। सबका कल्याण होगा। अकस्मात् सेना के समक्ष एक विलक्षण तेजपुंज प्रकट हुआ, जिससे सबके नेत्र चुँधिया गये। सैनिक नेत्रों को रगड़-रगड़ कर उस विलक्षण आकृति को देखने लगे। भार्गव परशुराम दक्षिण कान में इक्कीस रुद्राक्षों की माला धारण किये हुए थे, मानो इक्कीस बार उनके द्वारा क्षत्रिय विनाश की प्रतीक हों। परशुराम को देखकर राजा दशरथ संतप्त हो गये क्योंकि उनके पुत्र अभी किशोरावस्था में ही थे। अपनी दशा पर भी वे खिन्न थे। परशुराम ने राम से कहा—राजा जनक के यहाँ रखे जिस शिव धनुष को अन्य राजा हिला तक न पाये उसी को तुमने तोड़ दिया। तुम (राम) से पूर्व 'राम' शब्द से संसार में केवल मेरा ही बोध होता था, किन्तु अब मेरा यश क्षीण सा हो रहा है। मेरे अस्त्रों से निकली ध्वनि से पर्वत काँप जाते थे। मेरे मात्र दो शत्रु हैं, पिता की गौ चुराने वाला हैहय कार्तवीर्य और मेरी कीर्ति को क्षीण करने वाले तुम!!

बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितम्
द्वौ रिपू मम मतौ समागतौ।
धेनुवत्स हरणाच्च हैहय-
स्त्वञ्च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः।। (रघु० ११/७४)

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के ११वें सर्ग में जामदग्न्य की अपरिमित शक्ति और तेजस्वी व्यक्तित्व का जो वर्णन किया है, वह उनके क्षात्र एवं ब्राह्म तेज का परिचायक है। वे कहते हैं—

क्षत्रियान्त करणोऽपि विक्रमः
तेन मामवति नाजिते त्वयि।
पावकस्य महिमा स गण्यते
कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि स।। (रघु० ११/७५)

"क्षत्रियों का विनाश करने वाला अपना पराक्रम भी तब तक मेरी रक्षा नहीं कर सकता जब तक मैं तुम्हें न जीत लूँ!! अग्नि का सच्चा रूप तो यही है कि जैसे वह सूखे तिनकों में दहकती है, वैसी ही सागर तल में भी दहके। हे दाशरथि राम! जिस शिव धनुष को तोड़कर तुम स्वयं को पराक्रमी समझ रहे हो उसकी शक्ति और सुदृढ़ता को तो विष्णु भगवान् ने

पूर्व ही हर लिया था। नदी तट के जिस वृक्ष को जलधाराओं ने पहले ही प्रकम्पित कर दिया हो जड़ पहले ही खोखली कर दी हो, यदि वायु का साधारण झोंका उसे गिरा दे तो उसमें वायु की क्या बहादुरी!! अतः युद्ध की बात तो बाद में होगी। पहले तुम मेरे इस धनुष की ज्या (डोरी) पर बाण को खींचकर तो दिखा दो। यदि तुमने इतना भी कर दिखाया तो मैं तुम्हें तुल्य पराक्रम वाला मान लूँगा।"

परशुराम के ऐसा कहने पर दाशरथि राम ने मुस्कराते हुए सहज भाव से उनके हाथों से धनुष अपने हाथों में ले लिया। मानो परशुराम के प्रश्न का उत्तर दे दिया। धनुष हाथ में लेते ही राम को अपने वास्तविक स्वरूप (नारायणरूप) का ध्यान हो आया—

पूर्वजन्म धनुषा समागतः
सोऽतिमात्र लघुदर्शनोऽभवत्।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः
किम्पुनस्त्रिदश चाप लाञ्छितः।।
तेन भूमि निहितैककोटि तत्
कार्मुकञ्च बलिनाधिरोपितम्।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृताम्
धूमशेष इव धूमकेतनः।। (रघु० ११/८०-८१)

पूर्वजन्म के अपने ही उस धनुष को हाथ में लेते ही दाशरथि राम की शोभा दर्शनीय हो गई। एक तो नव-अवस्था उस पर उनका ही धनुष उनके ही हाथों में!!

दशरथनन्दन राम ने धनुष की एक कोटि (छोर) को पृथ्वी पर रखकर उस पर सन्धान करके जामदग्न्य परशुराम को दिखाया। परशुराम मौन, गम्भीर, शान्त हो गये। आमने-सामने खड़े दाशरथि राम और भार्गव राम सायंकालीन चन्द्रमा एवं सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे। राम ने विनम्रतापूर्वक तपोनिधि परशुराम के दोनों चरणों का स्पर्श किया और क्षमा याचना भी की। क्षत्रिय कुल प्रसूत राम का ये व्यवहार ब्राह्मणवंशावतंस परशुराम के प्रति उचित ही था। इससे दोनों के कुलाचार और महत्त्व की प्रतिष्ठा हुई। परशुराम ने शालीनतापूर्वक कहा—

राजसत्त्वमवधूय मातृकम्,
पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा।
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया,
निग्रहोऽप्ययमनुग्रही कृतः।।
साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते,
देवकार्यमुपपादयिष्यतः।
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणम्,
लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे।
(रघु० ११/९०, ९१)

हे रघुनन्दन! आपने मुझे विगत मान करके वास्तव में अनुग्रह ही किया है। आपने तो मेरा अभिनन्दन किया है। मेरे शरीर और स्वभाव में विद्यमान रजोगुणप्रधान मातृ-अंश को दूर करके आपने पितृ-अंश प्रधान सत्वगुण को उद्‌बुद्ध कर दिया है। अब मैं ब्राह्मणोचित शम से अभिभूषित होकर तप समाधि आदि में प्रवृत्त होऊँगा। मैं शुभाशंसा करता हूँ कि आप अपने जीवन में सत्कर्मों को सम्पादित करते हुए निर्विघ्नभाव से यश तथा सफलता का अर्जन करें। परशुराम यह कहते हुए तिरोहित हो गए।

अणु विज्ञान विशेषज्ञ परशुराम आजीवन ब्रह्मचारी रहे। भृगुकुल की वंशपरम्परा का विकास-विस्तार उनके भ्राताओं सुषेण, वसु और विश्वावसु के द्वारा ही सम्पन्न हुआ।

पौराणिक मान्यतानुसार चिरजीवी परशुराम आज भी यमुना भागीरथी के मध्यवर्ती, हिममण्डित हिमगिरि की उपशृंखला महेन्द्रगिरि पर तपश्चर्यारत है। सिद्ध पुरुषों तथा योगियों के वरेण्य जामदग्न्य के दर्शन आज भी हो जाते हैं ऐसी मान्यता है।

आजकल रामलीलाओं में परशुराम के व्यक्तित्व का चित्रण शालीनतापूर्ण नहीं होता। रामलीला का प्रचलन कब से प्रारम्भ हुआ ये प्रस्तुत सन्दर्भ का प्रतिपाद्य नहीं है। फिर भी जिन महानुभावों द्वारा यह उपक्रम प्रारम्भ किया गया वे नाटकीयता के व्यामोह में परशुराम के चरित्र के साथ न्याय नहीं कर पाये। सम्भवतः गोस्वामी तुलसीदास के मानस की कल्पना को ही वे अपना आधार मानते हैं। गोस्वामी जी ने ऐसा वर्णन क्यों किया ये रहस्य तो उद्‌घाटित किया जायेगा, किन्तु जैसा कि हम स्पष्ट उल्लेख कर चुके हैं प्राचीन किसी भी प्रामाणिक महाकाव्य, नाटक आदि में इस प्रकार का निराधार वर्णन उपलब्ध नहीं होता।

आदि काव्य वाल्मीकिरामायण में परशुराम को, मिथिला से वरयात्रा के वापिस लौटते समय, अयोध्या के मार्ग में राम से संवाद करते प्रदर्शित किया गया है। लक्ष्मण से इनका कोई संवाद नहीं हुआ।

महाभारत में उल्लेख है कि परशुराम ने सीधे अयोध्या जाकर राम के पराक्रम की परीक्षा ली तब दोनों के मध्य वाद-विवाद होता है। वहाँ भी परशुराम का लक्ष्मण से कोई संवाद नहीं होता। राम और परशुराम के संवाद में कहीं-कहीं कटुता का भी आभास प्राप्त होता है, किन्तु अन्त में परशुराम अपनी शालीनता ज्ञान प्रौढ़ता और विवेकशीलता से राम को अभिभूत कर देते हैं और दाशरथि उनका चरण स्पर्श कर क्षमा याचना करते हैं।

महाकवि कालिदास ने भार्गव परशुराम के बल, पराक्रम एवं तेज को उत्कृष्ट वर्णन किया है उनका राम से ही संवाद दिखाया है, लक्ष्मण से नहीं। जिन महानुभावों ने जनकपुरी में ही परशुराम और लक्ष्मण के मध्य, सीतास्वयंवर के मण्डप में ही कटुतापूर्ण संवाद की परिकल्पना की है, वे यह भूल गये हैं कि जामदग्न्य परशुराम की तुलना राम से भी उचित नहीं है फिर लक्ष्मण से तुलना का तो प्रश्न ही नहीं। परशुराम के अपूर्व वीरत्व का अपमान करवाना सर्वथा अनुचित है।

परशुराम के स्वरूप में भी ये मंचनकर्त्ता विकृत दृष्टि का प्रमाण देते हैं। भगवान्

भृगुकुल में अवतरित ब्रह्मतेज के अप्रतिम प्रतिमान थे। वे शौर्य और तेज के निधान थे। उनके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत शोभायमान था, किन्तु रामलीला मण्डलियाँ परशुराम का अभिनय करने वाले पात्र के गले में मूँज घास से बना मोटा रस्सा डालकर परशुराम का न जाने क्यों उपहास करवाते हैं? ये विद्रूपता अव्यावहारिक है। इससे तो दो वर्णों ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य अकारण कटुता उभर सकती है। सामाजिक सौमनस्य के स्थान पर पारस्परिक घृणावर्धक इस प्रसंग का अथवा परशुराम की विद्रूपता का क्या अर्थ है? निरर्थक मानापमान के भाव अंकुरित होने से किसका लाभ है!!

परशुराम से सम्बद्ध ऐसे अभद्र प्रसंगों का या तो प्रदर्शन नहीं होना चाहिए अथवा इसका जैसा उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक और राजनैतिक रहस्य पूज्य पितृचरणों शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री ने प्रतिपादित किया है वैसा स्पष्टतः मंच से घोषणापूर्वक बतलाया, समझाया जाना चाहिए।

रामचरित मानस में राजा जनक के संकेत पर बन्दीगण घोषणा करते हैं–

सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा।
राज समाज आजु जोइ तोरा।।
त्रिभुवन जय समेत वैदेही।
बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही।।

(मानस बाल० २५०/३-४)

अर्थात शिवधनुष को जो भी राजा तोड़ डालेगा उसे जहाँ मेरी सुन्दरी कन्या सीता प्राप्त होगी वहाँ त्रिभुवन की विजयश्री भी उसे ही मिलेगी। इस कार्य को सम्पन्न करने में जब कोई भी राजा समर्थ न हो सका तब अन्त में श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा से राम ने धनुष को उठाया और तत्काल तोड़ डाला। जनक ने सीता को राम को सौंपने का उपक्रम किया, बुद्धिमान राजाओं ने तो प्रसन्नभाव से इस बात का समर्थन किया, किन्तु कुछ अदूरदर्शी राजा बलात् सीता को छीन लेने की आड़ में मूर्खतापूर्ण गृहयुद्ध आरम्भ करना ही चाहते थे कि उनके दमन के लिए मुनि समाज की योजना के अनुसार तत्काल श्री परशुराम जी आ पहुँचे। सब राजा स्तम्भित रह गये–

तेहिं अवसर सुनि सिवधनुभंगा।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा।।
देखि महीप सकल सकुचाने।
बाज झपट जनु लवा लुकाने।।
गौर सरीर भूतिभल भ्राजा।
भाल बिसाल त्रिपुण्ड बिराजा।।
सीस जटा ससि बदन सुहावा।
रिस बस कछुक अरुन होइ आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते।

सहज हुँ चितवत मनहुँ रिसाते।।
वृषभकन्ध उर बाहु बिसाला।
चारु जनेउ माल मृगछाला।।
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे।
धनु सर कर कुठारु कल काँधे।।
सांत वेषु करनी कठिन बरनि न जाई सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सबभूप।।

गोस्वामी जी ने बड़ा मनोवैज्ञानिक वातावरण चित्रित किया है। परशुराम को देखते ही राजाओं की जो दशा हुई उसका चित्रण करते हुए वे लिखते हैं—

देखत भृगुपति वेषु कराला।
उठे सकल भय बिकल भुआला।।
पितुसमेत कहि कहि निज नामा।
लगे करन सब दण्ड प्रनामा।।

इसके बाद परशुराम और राम का, परशुराम और लक्ष्मण का विस्तृत संवाद होता है। जिस परशुराम से सब राजा भयभीत थे तथा पिता सहित अपना नाम बतलाकर दण्ड प्रणाम कर रहे थे—उनसे राम और लक्ष्मण निर्भीकता के साथ बात कर रहे हैं और अन्त में ऐसी विस्मयजनक बात हुई कि परशुराम राम को अपना भी धनुष सौंपकर तपश्चर्या के लिए चले जाते हैं। इस घटना का ही यह प्रभाव पड़ा कि अयोध्या के सिंहासन का सिक्का सबके मन पर बैठ गया कि इनसे कभी भी विवाद करना मृत्यु को निमन्त्रण देना है। राम के वनवास के समय गृहयुद्ध की सम्भावना या राजाओं द्वारा आक्रमण की सम्भावना भी नहीं हो सकती।

वास्तव में विश्वामित्र, परशुराम आदि की योजना में सम्मिलित ऋषि-मुनियों के गुप्त निर्णयानुसार ही धनुष यज्ञ, सीता स्वयंवर और परशुराम के प्रत्यागमन के बहाने क्षुद्रहृदय खण्डराज्यों के नरेशों का मानमर्दन करके आर्य साम्राज्य के आभ्यन्तर शत्रुओं को समाप्त कर दिया।

वास्तव में गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में सांकेतिकरूप से राम के तथा परशुराम के माध्यम से तत्कालीन राष्ट्रीय एवं राजनैतिक परिस्थितयों में आर्य साम्राज्य के पुनः प्रतिष्ठापन की योजना को कार्यान्वित किया है। भारतवर्ष उस समय बड़ी गम्भीर स्थिति से गुजर रहा था। आपसी कलह, रागद्वेष ने यहाँ की राज्यसत्ता को जर्जर बना दिया था। विलासिता, उच्छृंखलता, लापरवाही आदि दोषों ने इसे पराधीनता (वानर जाति तथा राक्षस जाति की शक्ति के दबाव की पराधीनता) और पतन के द्वार पर पहुँचा दिया था। अनार्य साम्राज्य को तेज और शौर्य की प्रचण्ड ज्वालाओं में भस्म करके आर्यों की विजय वैजयन्ती फहराने और भारत एक बार फिर संगठित राष्ट्र बनकर प्रजा और समाज का मस्तक ऊँचा करने वाला राष्ट्र बन कर खड़ा होने में सक्षम हो सके इसके लिए समग्र क्रान्ति

अपेक्षित थी। सर्वसाधारण प्रजा और समाज नेता महर्षियों तथा देवताओं के हृदय में यह भावना फैल गई थी। यज्ञ, तीर्थ पर्वादि में होने वाले सन्त सम्मेलनों में इनकी चर्चा होती रहती। अन्त में महर्षि विश्वामित्र जो पहले राज्य कर चुके थे और राजनीति में अत्यन्त कुशल थे इस क्रान्ति के निदेशन के लिए तैयार किए गए। इस पूरी योजना में परशुराम के लिए भी महत्त्वपूर्ण अवसर पर किस रूप में प्रवेश करना है यह निर्धारित किया गया। पूर्व वर्णित घटना के अनुसार दबाव डालने और रघुवंशी सिंहासन को वर्चस्वी शक्ति प्रभा मण्डल का स्थायी प्रभाव बनवाने के लिए परशुराम नाटकीय शैली में योजनानुसार प्रवेश करते हैं।

श्री शास्त्रार्थ महारथी जी ने मंचों से और अपने सुप्रतिष्ठित मासिक पत्र "लोकालोक" के माध्यम से भी ये अनेक बार कहा कि या तो मंचों से उपर्युक्त पूरी योजना का संकेत दिया जाना चाहिए अन्यथा रामलीलाओं में लक्ष्मण परशुराम सवाद का स्वरूप बदलना चाहिए। परशुराम के विराट् व्यक्तित्व का उपहासात्मक चित्रण सर्वथा नहीं होना चाहिए। केवल भूमि, पर्वत, वन और पशुओं के समूह को राष्ट्र नहीं कहते। भूखण्ड में रहने वाले, जन्मे, बसे व्यक्तियों से राष्ट्र बनता है। इसके लिए सामाजिक एकता अपेक्षित है। वर्ण, जाति, सम्प्रदाय के समन्वय से, सौहार्द से ही राष्ट्र विकसित और समृद्ध होता है। परशुराम दुर्बलों, शोषितों, पीड़ितों और सामन्ती दमन चक्र में पिसते असहायों के पक्षधर थे, पोषक थे, रक्षक थे और त्राणकर्त्ता थे। उनके व्यक्तित्व को धूमिल करना उचित नहीं।



अनुपम परशुराम

भगवान् परशुराम का व्यक्तित्व वस्तुतः अनुपम है। उनके विषय में लोक संग्राहक विश्वास अपरिहार्य है। उनकी तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती, किसी से भी नहीं—अर्थात् दाशरथि राम से भी नहीं। लक्ष-लक्ष वर्षावधि में भी उनके समान योद्धा आज तक जन्म नहीं ले पाया। सत्य है कि राम पराक्रमी थे, शासकशिरोमणि थे, आदर्श रामराज्य के प्रवर्तक भी। वे शासक दशरथ के पुत्र थे, उन्होंने वानरों, राक्षसों की सेना के बल पर लंका पर विजय प्राप्त की थी, मात्र एक युद्ध किया था—रावण को मारकर विजयश्री का वरण भी किया था, किन्तु भार्गव परशुराम ने ऋषिपुत्र होते हुए भी अद्भुत शौर्य प्रदर्शन किया। उनके पिता जमदग्नि, पितामह ऋचीक और वंशप्रवर्तक भृगु शासक नहीं थे। परशुराम के पास सेना भी नहीं थी। न उनके पास सत्ता की शक्ति थी। फिर भी उन्होंने शासकों के साथ इक्कीस बार युद्ध किया और हर बार विजय प्राप्त की।

स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठ सकता है कि उद्भट योद्धा परशुराम ने लंकेश रावण को क्यों नहीं मारा। राम रावण के युद्ध में राम के द्वारा लक्ष्मण से शूर्पणखा को नासिका विहीन करवाना और रावण के द्वारा सीताहरण रूप कारण विद्यमान था, किन्तु रावण ने परशुराम से किसी भी प्रकार का विवाद कभी नहीं किया, दोनों शिव के परम भक्त थे, दोनों ऋषि पुत्र थे। (परशुराम महर्षि जमदग्नि के और रावण महर्षि विश्रवा के पुत्र थे।) रावण शासक थे, परशुराम शासकों के भी अनुशासक। दोनों ब्रह्मतेज और क्षात्र तेज से सम्पन्न थे। परशुराम अकारण ही रावण पर आक्रमण क्यों करते!

इस सबसे महत्त्वपूर्ण और विवशता से भरा कारण यह था, परशुराम अपने पूर्वजों को दिये गये वचनानुसार शस्त्रग्रहण नहीं कर सकते थे। विचित्रधर्म संकट!! रावण तथा उसके दुर्दान्त अनुचरों के लोमहर्षक अत्याचारों को देख नहीं सकते थे और पितरों को दिये वचनों के बन्धन के कारण शस्त्र नहीं उठा पा रहे थे। इन्हीं कारणों से उन्हें अपने प्रिय साथी वैष्णव धनुष को तथा अपने लोकोत्तर तेज को मानव धर्म की रक्षा के निमित्त दाशरथी राम को देने का निर्णय लेना पड़ा।

महाभारत कालीन वीरों की लम्बी शृंखला है। भीष्म, द्रोणाचार्य, अर्जुन, कर्ण आदि महारथियों से भी परशुराम के शौर्य की तुलना नहीं की जा सकती। भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण ने तो परशुराम से ही शस्त्रविद्या की शिक्षा प्राप्त की थी। अर्जुन की विजय में कृष्ण का योगदान सर्वविदित है।

जामदग्न्य अपने शिष्यों में देश और धर्म की रक्षा के लिए संगठन की भावना कूट-कूट कर भरते थे। स्वाभिमान के संरक्षण के लिए वे किसी सीमा तक भी जा सकते थे। वे धन को महत्त्व नहीं देते थे। उनमें संघटन की अपूर्व क्षमता थी। दुर्बलों पर, दीनों पर जहाँ भी संकट आता वे अपने शिष्यों को लेकर पहुँच जाते थे। श्री के०एम० मुंशी ने भगवान् परशुराम से सम्बद्ध एक रचना में लिखा है—"परशुराम के प्रताप के आगे हिमालय से नर्मदा तक के राज्यों में उथलपुथल मच गई। इन्होंने नर्मदा के उत्तर में आर्य सत्ता प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण देश को एक नया जीवन, नई संस्कृति और नई एकता प्रदान की।"

परशुराम "अपरिग्रह" की तो साक्षात् प्रतिमा कहे जा सकते हैं। जो भी अर्जित करते

उसे दूसरों के कल्याण के लिए अर्पित कर देते थे। वे पदलोलुपता और अधिकार को कभी प्रश्रय न देकर कर्त्तव्य बोध का अनुपम उदाहरण उपस्थित करते थे। वे धर्म रक्षा के लिए सर्वस्व समर्पित करने को तत्पर रहते थे। विघटनकारी शक्तियों का मान मर्दन करके ब्रह्मतेज की ज्योति प्रदीप्त करना उनके जीवन का ध्येय रहा।

अपने पूर्व पुरुषों से प्रतिज्ञात होने के कारण परशुराम ने जब अपना वैष्णव धनुष दाशरथी राम को सौंप दिया कि रावण आदि दुष्टों का संहार अब आप कीजिये तो साथ ही अपनी सम्पूर्ण विद्या और कला भी उन्हें प्रदान की। उन्होंने राष्ट्र रक्षा और धर्मरक्षा को प्राथमिकता दी। मानवता की सुरक्षा और गरिमा को गौरव दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा—"मेरा अजेय परशु ले लो। मेरी निर्भयता ले लो और ले लो मेरी विद्या और कला। तुम समर्थ हो। धर्म कर्म और संस्कृति की ध्वजा न झुकने पाये।"

परशुराम अनुपम थे, अनुपम हैं और चिर जीवी होने के कारण अनुपम रहेंगे।

वास्तव में अन्याय जहाँ भी होगा, अनीति जहाँ भी सिर उठायेगी, मानवता जहाँ भी रौन्दी जायेगी, ब्राह्मणत्व पर जहाँ भी आक्रमण होगा और छल-बल का आश्रय लेकर जहाँ भी प्रपंच का बोलबाला होगा वहाँ परशुराम अवश्य उपस्थित होंगे। परशुराम ने त्रेता में अपना दिव्य वैष्णव धनुष और अमोघ बाण दाशरथी राम को प्रदान किया, द्वापर में श्रीकृष्ण को आततायियों के विनाश के लिए 'सुदर्शनचक्र' दिया। कलियुग में अवतरित होने वाले कल्कि भगवान् को चिरजीवी भगवान् परशुराम ही सांगोपांग वेद और चौंसठ कलाओं का शिक्षण देंगे। कल्कि पुराण में संकेत मिलता है—

साङ्गं चतुःषष्टिकलं धनुर्वेदादिकं च यत्।
समाधीत्य जामदग्न्यात् कल्किः प्राह कृताञ्जलिः।।

परशुराम की कहीं भी उपस्थिति का तात्पर्य है दीनजनरक्षक। ऐसे संरक्षक का वहाँ रहना जिसकी विद्यमानता में सर्वत्र शान्ति और सद्भावना की प्रतिष्ठा होगी। परशुराम निर्धन, असहाय पीड़ितों को केवल ज्ञान-उपदेश का मीठा घूँट ही नहीं पिलायेंगे, वे मानवता को जागृत करके उसे लक्ष्य बिन्दु तक पहुँचायेंगे। असमर्थ असहाय जनों को उनके आदर्श तक ले जायेंगे। वे पीड़ितों की पीड़ा को आत्मसात् कर लेंगे। दिनकर के शब्दों में तब अभाव और त्रासदी से मुक्ति मिलेगी। कर्मवीर परशुराम जीवन की प्रगति के मार्ग में अड़े निर्मम पाषाणों को चकनाचूर कर देंगे। उनके प्रभामण्डल से चकित भयभीत भुजंगधर्मी आततायियों के अनीति फण सिकुड़ जायेंगे। उनके कण्ठ की गरल थैली सूख जायेगी। जीभ और दाँत टूटकर गिर जायेंगे। सत्य-अहिंसा-शान्ति के ऊपर असत्-हिंसा और अशान्ति के काले मेघ नहीं घिरेंगे। युद्ध के क्रोधित गिद्ध शान्ति नीड़ों को नहीं उजाड़ेंगे। अमंगल की आँच नहीं रहेगी, मंगल ही मंगल होगा। परशुराम ने कल्याणकारी लोकतन्त्र की स्थापना की, प्राणियों में समता, सहयोगिता और सद्भावना जागृत की—

"शोषण-दमन और छल-बल का दोष जहाँ भी पाया।
वीर परशुधर ने जनता में जा जनजन्त्र जगाया।।

परशुराम परशुराम हैं। वे अनुपम हैं। उनकी प्रासंगिकता सदैव रहेगी।

भृगुवंशोवतंसाय नमो ब्रह्मविभूतये।
नमोऽस्त्वनाद्यनन्ताय नमोऽस्तुचिरजीविने।।

।। श्री गणेशाय नमः।

परिशिष्ट (क)

श्री परशुराम सहस्रनाम स्तोत्रम्

पुरा दाशरथी रामः कृतोद्वाहः सबान्धवः।
गच्छन्नयोध्यां राजेन्द्रः पितृमातृसुहृद् वृतः।।१।।
ददर्श यान्तं मार्गेण क्षत्रियान्तकरं विभुम्।
रामं तं भार्गवं दृष्ट्वाभितस्तुष्टाव राघवः।
रामः श्रीमान्महाविष्णुरिति नाम सहस्रतः।।२।।
अहं त्वत्तः परं राम विचरामि स्वलीलया।
इत्युक्तवन्तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।।३।।

राघव उवाच।

यन्नामग्रहणाज्जन्तुः प्राप्नुयान्न भवापदम्।
यस्य पादार्चनात्सिद्धिः स्वेप्सितां नौमि भार्गवम्।।४।।
निःस्पृहो यः सदा देवो भूम्यां वसति माधवः।
आत्मबोधोदधिं स्वच्छं योगिनं नौमि भार्गवम्।।५।।
यस्मादेतज्जगत्सर्वं जायते यत्र लीलया।
स्थितिं प्राप्नोति देवेशं जामदग्न्यं नमाम्यहम्।।६।।
यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण ब्रह्माद्याः सकलाः सुराः।
शतवारं भवन्त्यत्र भवन्ति न भवन्ति च।।७।।
तप उग्रं चचाराद्रौ यमुद्दिश्य च रेणुका।
आद्या शक्तिर्महादेवी रामं तं प्रणमाम्यहम्।।८।।

अस्य श्रीजामदग्न्यसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीराम ऋषिः। जामदग्न्यः परमात्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीमदविनाशरामप्रीत्यर्थं चतुर्विधपुरुषार्थ सिध्यर्थं जपे विनियोगः।

अथ करन्यासः।

ओ३म् ह्रां गोविन्दात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ओ३म् ह्रीं महीधरात्मने तर्जनीभ्यां नमः।
ओ३म् ह्रूं हृषीकेशात्मने मध्यमाभ्यां नमः।
ओ३म् ह्रैं त्रिविक्रमात्मने अनामिकाभ्यां नमः।
ओ३म् ह्रौं विष्णवात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ओ३म् ह्रः माधवात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अथ हृदय न्यासः।

ओ३म् ह्रां गोविन्दात्मने हृदयाय नमः।

ओ३म् ह्रीं महीधरात्मने शिरसे स्वाहा।
ओ३म ह्रं हृषीकेशात्मने शिखायै वषट्।
ओ३म् ह्रैं त्रिविक्रमात्मने कवचाय हुम्।
ओ३म् ह्रौं विष्णवात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।
ओ३म् ह्रः माधवात्मने अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्।

शुद्धजाम्बूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं कृष्णाजिनधरं विभुम्।।९।।
बाणचापौ च परशुमभयं च चतुर्भुजैः।
प्रकोष्ठशोभि रुद्राक्षैर्दधानं भृगुनन्दनम्।।१०।।
हेमयज्ञोपवीतं च स्निग्धस्मितमुखाम्बुजम्।।
दर्भाञ्चितकरं देवं क्षत्रियक्षयदीक्षितम्।।११।।
श्रीवत्सवक्षसं रामं ध्यायेद्वै ब्रह्मचारिणम्।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं सनकाद्यैरभिष्टुतम्।।१२।।
सहस्रमिव सूर्याणामेकी भूय पुरः स्थितम्।
तपसामिव सन्मूर्तिं भृगुवंश तपस्विनम्।।१३।।
चूड़ाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छनवपुर्धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौञ्ज्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकम्।
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डं परं पैप्पलम्।।१४।।
रेणुकाहृदयानन्द भृगुवंशतपस्विनम्।
क्षत्रियाणामन्तकं पूर्णं जामदग्न्यं नमाम्यहम्।।१५।।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः।।१६।।
हरिः परशुधारी च रामश्च भृगुनन्दनः।
एकवीरात्मजोविष्णुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्।।१७।।
सह्याद्रिवासी वीरश्च क्षत्रजित्पृथिवीपतिः।
इति द्वादशनामानि भार्गवस्य महात्मनः।
यस्त्रिकाले पठेन्नित्यं सर्वत्र विजयी भवेत्।।१८।।
ओ३म् रामः श्रीमान्महाविष्णुर्भार्गवो जमदग्निजः।
तत्त्वरूपी परं ब्रह्म शाश्वतः सर्वशक्तिधृक्।।१।।
वरेण्यो वरदः सर्वसिद्धिदः कञ्जलोचनः।
राजेन्द्रश्च सदाचारो जामदग्न्यः परात्परः।।२।।
परमार्थैकनिरतो जितामित्रो जनार्दनः।
ऋषि प्रवरवन्द्यश्च दान्तः शत्रुविनाशनः।।३।।

सर्वकर्मा पवित्रश्च अदीनो दीनसाधकः।
अभिवाद्यो महावीरस्तपस्वी नियमः प्रियः।।४।।
स्वयंभूः सर्वरूपश्च सर्वात्मा सर्वदृक्प्रभुः।
ईशानः सर्वदेवादिर्वरीयन्सर्वगोऽच्युतः।।५।।
सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यः परमेश्वरः।
ज्ञानभाव्योऽपरिच्छेद्यः शुचिर्वाग्मी प्रतापवान्।।६।।
जितक्रोधो गुडाकेशो द्युतिमानरिमर्दनः।
रेणुकातनयः साक्षादजितोऽव्यय एव च।।७।।
विपुलांसो महोरस्कोऽतीन्द्रो वन्द्यो दयानिधिः।
अनादिर्भगवानिन्द्रः सर्वलोकारिमर्दनः।।८।।
सत्यः सत्यव्रतः सत्यसन्धः परमधार्मिकः।
लोकात्मा लोककृल्लोकवन्द्यः सर्वमयो निधिः।।९।।
वश्यो दया सुधीर्गोप्ता दक्षः सर्वैकपावनः।
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च ब्रह्म ब्रह्मप्रकाशकः।।१०।।
सुन्दरोऽजिनवासाश्च ब्रह्मसूत्रधरः समः।
सौम्यो महर्षिः शान्तश्च मौञ्जीभृद्दण्डधारकः।।११।।
कोदण्डी सर्वजित्क्षत्रदर्पहा पुण्यवर्धनः।
कविर्ब्रह्मर्षि वरदः कमण्डलुधरः कृती।।१२।।
महोदरोऽतुलो भाव्यो जितषड्वर्गमण्डलः।
कान्तः पुण्यः सुकीर्तिश्च द्विभुजश्चादि पूरुषः।।१३।।
अकल्मषो दुराराध्यः सर्वावासः कृतागमः।
वीर्यवान्स्मितभाषी च निवृत्तात्मा पुनर्वसुः।।१४।।
अध्यात्मयोगकुशलः सर्वायुधविशारदः।
यज्ञस्वरूपी यज्ञेशो यज्ञपालः सनातनः।।१५।।
घनश्यामः स्मृतिः शूरो जरामरणवर्जितः।
धीरो दान्तः सुरूपश्च सर्वतीर्थमयो विधिः।।१६!!
वर्णी वर्णाश्रमगुरुः सर्वजित्पुरुषोऽव्ययः।
शिवशिक्षापरो युक्तः परमात्मा परायणः।।१७।।
प्रमाण रूपो दुर्ज्ञेयः पूर्णः क्रूरः क्रतुर्विभुः।
आनन्दोऽथ गुणश्रेष्ठोऽनन्तदृष्टिर्गुणाकरः।।१८।।
धर्नुधरो धनुर्वेदः सच्चिदानन्दविग्रहः।
जनेश्वरो विनीतात्मा महाकायस्तपस्विराट्।।१९।।
अखिलाद्यो विश्वकर्मा विनीतात्मा विशारदः।
अक्षरः केशवः साक्षी मरीचिः सर्वकामदः।।२०।।
कल्याणः प्रकृति कल्पः सर्वेशः पुरुषोत्तमः।

लोकाध्यक्षो गभीरोऽथ सर्वभक्तवरप्रदः।।२१।।
ज्योतिरानन्दरूपश्च वह्निरक्षय आश्रमी।
भूर्भवः स्वस्तपोमूर्ती रविः परशुधृक् स्वराट्।।२२।।
बहुश्रुतः सत्यवादी भ्राजिष्णुः सहनो बलः।
सुखदः कारणं भोक्ता भवबन्धविमोक्षकृत्।।२३।।
संसारतारको नेता सर्वदुःखविमोक्षकृत्।
देवचूड़ामणिः कुन्दः सुतपा ब्रह्मवर्धनः।।२४।।
नित्योनियतकल्याणः शुद्धात्माथ पुरातनः।
दुःस्वप्ननाशनो नीतिः किरीटी स्कन्ददर्पहृत्।।२५।।
अर्जुनः प्राणहा वीरः सहस्त्र भुजजिद्धरिः।
क्षत्रियान्तकरः शूरः क्षितित्रासकरान्तकृत्।।२६।।
परश्वधधरो धन्वी रेणुकावाक्य तत्परः।
वीरहा विषमो वीरः पितृवाक्यपरायणः।।२७।।
मातृप्राणद ईशश्च धर्मतत्त्वविशारदः।
पितृक्रोधहरः क्रोधः सप्तजिह्वसमप्रभः।।२८।।
स्वभावभद्रः शत्रुघ्नः स्थाणुः शम्भुश्च केशवः।
स्थविष्ठः स्थविरो बालः सूक्ष्मो लक्ष्यद्युतिर्महान्।।२९।।
ब्रह्मचारी विनीतात्मा रुद्राक्षवलयः सुधीः।
अक्षकर्णः सहस्त्रांशुर्दीप्तः कैवल्यतत्परः।।३०।।
आदित्यः कालरुद्रश्च कालचक्रप्रवर्तकः।
कवची कुण्डली खड्गी चक्री भीमपराक्रमः।।३१।।
मृत्युञ्जयो वीर सिंहो जगदात्मा जगद्गुरुः।
अमृत्युर्जन्मरहितः कालज्ञानी महापटुः।।३२।।
निष्कलङ्को गुणग्रामोऽनिर्विण्णः स्मररूपधृक्।
अनिवेद्यः शतावर्तो दण्डो दमयिता दमः।।३३।।
प्रधानस्तारको धीमांस्तपस्वी भूतसारथिः।
अहः संवत्सरो योगी संवत्सरकरो द्विजः।।३४।।
शाश्वतो लोकनाथश्च शाखी दण्डी बली जटी।
कालयोगी महानन्दः तिग्ममन्युः सुवर्चसः।।३५।।
अमर्षणो मर्षणात्मा प्रशान्तात्मा हुताशनः।
सर्ववासाः सर्वचारी सर्वाधारो विरोचनः।।३६।।
हैमो हेमकरो धर्मो दुर्वासा वासवो यमः।
उग्रतेजा महातेजा जयो विजयः कालजित्।।३७।।
सहस्त्रहस्तो विजयो दुर्धरो यज्ञभागभुक्।
अग्निर्ज्वाली महाज्वालस्त्वतिधूमो हुतो हविः।।३८।।

स्वस्तिदः स्वस्तिभागश्च महान्भर्गः परो युवा।
महत्पादो महाहस्तो बृहत्कायो महायशाः।।३९।।
महाकटिर्महाग्रीवो महाबाहुर्महाकरः।
महानासो महाकम्बुर्महामायः पयोनिधिः।।४०।।
महावक्षा महौजश्च महाकेशो महाजनः।
महामूर्धा महामात्रो महाकर्णो महाहनुः।।४१।।
वृक्षाकारो महाकेतुर्महादंष्ट्रो महामुखः।
एकवीरो महावीरो वसुदः कालपूजितः।।४२।।
महामेघनिनादी च महाघोषो महाद्युतिः।
शैवः शैवागमाचारी हैहयानां कुलान्तकः।।४३।।
सर्वगुह्यमयो वज्री बहुलः कर्मसाधनः।
कामी कपिः कामपालः कामदेवः कृतागमः।।४४।।
पञ्चविंशतितत्वज्ञः सर्वज्ञः सर्वगोचरः।
लोकनेता महानादः कालयोगी महाबलः।।४५।।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यकृद्वीर्यकोविदः।
वेदवेद्यो वियद्गोप्ता सर्वामिरमुनीश्वरः।
सुरेशः शरणं शर्म शब्दब्रह्म सतां गतिः।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः।।४७।।
शुद्धः पूतः शिवारम्भः सहस्रभुजजिद्धरिः।
निरवद्यपदोपायः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः।।४८।।
चर्तुर्भुजो महादेवो व्यूढोरस्को जनेश्वरः।
द्युमणिस्तरणिर्धन्यः कार्तवीर्यबलापहा।।४९।।
लक्ष्मणाग्रजवन्द्यश्च नरो नारायणः प्रियः।
एकज्योतिर्निरातङ्को मत्स्यरूपी जनप्रियः।।५०।।
सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः कूर्मो वाराहकस्तथा।
व्यापको नारसिंहश्च बलिजिन्मधुसूदनः।।५१।।
अपराजितः सर्वसहो भूषणो भूतवाहनः।
निवृत्तः संवृतः शिल्पी क्षुद्रहा नित्य सुन्दरः।।५२।।
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिरनाकुलः।
प्रशान्तबुद्धिरक्षुद्रः सर्वसत्वावलम्बनः।।५३।।
परमार्थगुरुर्देवो माली संसारसारथिः।
रसो रसज्ञः सारज्ञः कङ्कणीकृतवासुकिः।।५४।।
कृष्णः कृष्णस्तुतो धीरो मायातीतो विमत्सरः।
महेश्वरो महीभर्ता शाकल्यः शर्वरीपति।।५५।।
तटस्थ कर्णदीक्षादः सुराध्यक्षः सुरारिहा।

ध्ययोऽग्रधुर्यो धात्रीशो रुचिस्त्रिभुवनेश्वरः।।५६।।
कर्माध्यक्षो निरालम्बः सर्वकाम्यः फलप्रदः।
अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशांपतिः।।५७।।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशो जगन्नाथो जनेश्वरः।
ब्रह्मा हंसश्च रुद्रश्च स्रष्टा हर्ता चतुर्मुखः।।५८।।
निर्मदो निरहंकारो भृगुवंशोद्वहः शुभः।
वेधा विधाता द्रुहिणो देवज्ञो देवचिन्तनः।।५९।।
कैलासशिखरावासी ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः।
अर्थोऽनर्थो महकोशो ज्येष्ठः श्रेष्ठः शुभाकृतिः।।६०।।
बाणाग्ंिदमनो यज्वा स्निग्धप्रकृतिरग्नियः।
वरशीलो वरगुणः सत्यकीर्तिः कृपाककरः।।६१।।
सत्ववान्सात्त्विको धर्मी बुद्धः कल्की सदाश्रयः।
दर्पणो दर्पहा दर्पातीतो दृप्तः प्रवर्तकः।।६२।।
अमृताशोऽमृतवपुर्वाङ्मयः सदसन्मयः।
निधानगर्भो भूशायी कपिलो विश्वभोजनः।।६३।।
प्रभविष्णुर्ग्रसिष्णुश्च चतुर्वर्गफलप्रदः।
नारसिंहो महाभीमः शरभः कलिपावनः।।६४।।
उग्रः पशुपतिर्भर्गो वैद्यः केशिनिषूदनः।
गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता गोपालो गोपवल्लभः।।६५।।
भूतावासो गुहावासः सत्यवासः श्रुतागमः।
निष्कण्टकः सहस्रार्चिः स्निग्धः प्रकृतिदक्षिणः।।६६।।
अकम्पितो गुणग्राही सुप्रीतः प्रीतिवर्धनः।
पद्मगर्भो महागर्भो वज्रगर्भो जलोद्भवः।।६७।।
गभस्तिर्ब्रह्मकृद्ब्रह्म राजराजः स्वयंभवः।
सेनानीरग्रणीः साधुर्वलस्तालीकरो महान्।।६८।।
पृथिवी वायुरापश्च तेजः खं बहुलोचनः।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वगुह्यमयो गुरुः।।६९।।
अविनाशी सुखारामस्त्रिलोकीप्राणधारकः।
निद्रा रूपक्षमा तन्द्रा धृतिर्मेधा स्वधा हविः।।७०।।
होता नेता शिवस्त्राता सप्तजिह्वो विशुद्धपात्।
स्वाहा हव्यश्च कव्यश्च शतघ्नी शतपाशधृक्।।७१।।
आरोहश्च निरोहश्च तीर्थ तीर्थकरो हरः।
चराचरात्मा सूक्ष्मस्तु विवस्वान्सवितामृतम्।।७२।।
तुष्टिः पुष्टिः कला काष्ठा मासः पक्षस्तु वासरः।
ऋतुर्युगादिकालस्तु लिंगमात्माथ शाश्वतः।।७३।।

चिरंजीवी प्रसन्नात्मा नकुलः प्राणधारणः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्।।७४।।
भूक्तिर्लक्ष्मीस्तथा मुक्तिर्विरजा विरजाम्बरः।
विश्वक्षेत्रं सदाबींज पुण्यश्रवणकीर्तनः।।७५।।
भिक्षुर्भैक्ष्यं गृहं दारा यजमानश्च याचकः।
पक्षी च पक्षवाहश्च मनोवेगो निशाचरः।।७६।।
गजहा दैत्यहा नाकः पुरुहूतः पुरुष्टुतः।
बान्धवो बन्धुवर्गश्च पिता माता सखा सूतः।।७७।।
गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्मान्धाता भूतभावनः।
सिद्धार्थकारी सर्वार्थश्छन्दो व्याकरणं श्रुतिः।।७८।।
स्मृतिर्गाथोपशान्तश्च पुराणः प्राणचञ्चुरः।
वामनश्च जगत्कालः संकृतश्च युगाधिपः।।७९।।
उद्गीथः प्रणवो भानुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा।
अन्तरात्मा हृषीकेशः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा।।८०।।
परश्वधायुधः शाखी सिंहगः सिंहवाहनः।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रो नगो मन्दरधृक्शरः।।८१।।
सह्याचलनिवासी च महेन्द्रकृतसश्रयः।
मनो बुद्धिरहंकारः कमलानन्दवर्धनः।।८२।।
सनातनतमः स्रग्वी गदी शङ्खो रथाङ्गभृत्।
निरीहो निर्विकल्पश्च माधवोऽथ सुरार्चितः।
योद्धा जेता महावीर्यः शंकरः संततः स्तुतः।।८४।।
विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिर्विश्वारामोऽथ विश्वकृत्।
आजानुबाहुः सुलभः परं ज्योतिः सनातनः।।८५।।
वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः सर्वभूताशयस्थितः।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।।८६।।
उर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिङ्गः प्रवरो वरदो वरः।
उन्मत्तवेशः प्रच्छन्नः सप्तद्वीपमहिप्रदः।।८७।।
द्विजधर्मप्रतिष्ठाता वेदात्मा वेदकृत्छ्रयः।
नित्यः संपूर्णकामश्च सर्वज्ञः कुशलागमः।।८८।।
कृपापीयूषजलधिर्धाता कर्ता परात्परः।
अचलो निर्मलस्तृप्तः स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितः।।८९।।
असहायः सहायश्च जगद्धेतुरकारणः।
मोक्षदः कीर्तिदश्चैव प्रेरकः कीर्तिनायकः।।९०।।
अधर्मशत्रुरक्षोभ्यो वामदेवो महाबलः
विश्ववीर्यो महावीर्यो श्रीनिवासः सतां गतिः।।९१।।

स्वर्णवर्णो वराङ्गश्च सद्योगी च द्विजोत्तमः।
नक्षत्रमाली सुरभिर्विमलो विश्वपावनः।।९२।।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः।
निदाघस्तपनो मेघो नभो योनिः पराशरः।।९३।।
सुखानिलः सुनिष्पन्नः शिशिरो नरवाहनः।
श्रीगर्भः कारणं जप्यो दुर्गः सत्यपराक्रमः।।९४।।
आत्मभूरनिरुद्धश्च दत्तात्रेयस्त्रिविक्रमः।
जमदग्निर्बलनिधिः पुलस्त्यः पुलहोऽङ्गिराः।।९५।।
वर्णी वर्णगुरुश्चण्डः कल्पवृक्षः कलाधरः।
महेन्द्रो दुर्भरः सिद्धो योगाचार्यो बृहस्पति।।९६।।
निराकारो विशुद्धश्च व्याधिहर्ता निरामयः।
अमोघोऽनिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वरः।।९७।।
स्वयंज्योतिर्गुरुतमः सुप्रसादोऽचलस्तथा।
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्भूमिजः सोमनन्दनः।।९८।।
भृगुर्महातपा दीर्घतपाः सिद्धो महागुरुः।
मन्त्री मन्त्रयिता मन्त्रो वाग्मी वसुमनाः स्थिरः।।९९।।
अद्रिरद्रिशयो शम्भुर्माङ्गल्यो मङ्गलो वृतः।
जयस्तम्भो जगत्स्तम्भो बहुरुपो गुणोत्तमः।।१००।।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवात्मा विरूपधृक्।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः।।१०१।।
आद्यन्तशून्यो वैकुण्ठः कर्मसाक्षी फलप्रदः।
दृढायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परायणः।।१०२।।
कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो देवेशः सूर्यतापनः।
अलुब्ध सर्वशास्त्रज्ञः शास्त्रार्थः परमः पुमान्।।१०३।।
अग्न्यास्यः पृथिवीपादो द्युमूर्धा दिक्श्रुतिः परः।
सोमान्तः करणो ब्रह्ममुखः क्षत्रभुजस्तथा।।१०४।।
वैश्योरुः शूद्रपादस्तु नदीसर्वाङ्गसन्धिकः।
जीमूतकेशोऽब्धिकुक्षिस्तु वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः।।१०५।।
क्षेत्रज्ञः तमसः पारी भृगुवंशोद्भवोऽवनिः।
आत्मयोनी रैणुकेयो महादेवो गुरुः सुरः।।१०६।।
एको नैकोऽक्षरः श्रीशः श्रीपतिर्दुःखभेषजम्।
हृषीकेशोऽथ भगवान्सर्वात्मा विश्वपावनः।।१०७।।
विश्वकर्मापवर्गोऽथ लम्बोदरशरीरधृक्।
अक्रोधोऽद्रोहमोहश्च सर्वतोऽनन्तदृक्तथा।।१०८।।
कैवल्यदीपः कैवल्यः साक्षी चेता विभावसुः।।

एकवीरात्मजो भद्रोऽभद्रहा कैटभार्दनः।।१०९।।
विबुधोऽग्रवरः श्रेष्ठः सवदेवोत्तमोत्तमः।
शिवध्यानरतो दिव्यो नित्ययोगी जितेन्द्रियः।।११०।।
कर्म सत्यं व्रतं चैव भक्तानुग्रहकृद्धरिः।
सर्गस्थित्यन्तकृद्रामो विद्याराशिर्गुरुत्तमः।।१११।।
रेणुकाप्राणलिङ्गं च भृगुवंश्यः शतक्रतुः।
श्रुतिमानेकबन्धुश्च शान्तभद्रः समञ्जसः।।११२।।
अध्यात्मविद्यासारश्च कालभक्षो विशृङ्खलः।
राजेन्द्रो भूपतिर्योगी निर्मायो निर्गुणो गुणी।।११३।।
वेदवेदाङ्गपारज्ञः सर्वकर्मा महेश्वरः।
हिरण्यमयः पुराणश्य बलभद्रो जगत्प्रदः।।११४।।

★

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव भृगुवंशजम्।
श्रीरामः पूजयामास प्रणिपातपुरःसरम्।।१।।
कोटिसूर्यप्रतीकाशो जटामुकुटभूषितः।
वेदवेदाङ्गपारज्ञः स्वधर्मनिरतः कविः।।२।।
ज्वालामालावृतो धन्वी तुष्टः प्राह रघूत्तमम्।
सर्वैश्वर्य समायुक्तं तुभ्यं प्रादां रघूत्तम।।३।।
स्वतेजो निर्गतं तस्मात्प्राविशद्राघवं ततः।
यदा विनिर्गतं तेजो ब्रह्माद्याः सकलाः सुराः।।४।।
चेलुश्वच ब्रह्ममदनं चकम्पे च वसुन्धरा।
ददाह भार्गवं तेजः प्रान्ते वै शतयोजनम्।।५।।
अधस्तादूर्ध्वतश्चैव हाहेति कृतवान्जनः।
तदा प्राह महायोगी प्रहसन्निव भार्गवः।।६।।

श्रीभार्गव उवाच

मा भैष्ट सैनिका रामो मत्तो भिन्नो न नामतः।
रूपेणाप्रतिमेनापि महदाश्चयर्मद्भुतम्।
संस्तुत्य प्रणायाद्रामः कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्।।७।।

श्रीराम उवाच

यद्रूपं भवतो लब्धं सर्वलोकभयंकरम्।
हितं च जगतां तेन देवानां दुःखनाशनम्।।८।।
जनार्दन करोम्यद्य विष्णो भृगुकुलोद्वह।
अशिषो देहि विप्रेन्द्र भार्गवस्तदनन्तरम्।।९।।
उवाचाशीर्वचो योगी राघवाय महात्मने।
परं प्रहर्षमापन्नो भगवान् राममब्रवीत्।।१०।।

धर्मे दृढ़त्वं युधि शत्रुघातो यशस्तथाद्यं परमं बलं च।
योगप्रियत्वं मम संनिकर्षः सदास्तु ते राघव राघवेश।।११।।
तुष्टोऽथ राघवः प्राह मया प्रोक्तं स्तवं तव।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्।।१२।।
द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं शतंः समानामुपभोगयुक्तम्।
कुले प्रसूतिं मातृतः प्रसादं समां प्राप्तिं प्राप्नुयाच्चापि दाक्ष्यम्।
प्रीतिं चाग्रयां बान्धवानां निरोगं कुलं प्रसूतैः पौत्रवर्गैः समेतम्।।१३।।
अश्वमेधसहस्रेण फलं भवति तस्य वै।
घृताद्यैः स्नापयेद्रामं स्थाल्यां वै कलशे स्थितम्।।१४।।
नाम्नां सहस्रेणानेन श्रद्धया भार्गवं हरिम्।
सोऽपि यज्ञसहस्रस्य फलं भवति वाञ्छितम्।।१५।।
पूज्यो भवति रूद्रस्य मम चापि विशेषतः।
तस्मान्नाम्नां सहस्रेण पूजयेद्यो जगद्गुरुम्।।१६।।
जपन्नाम्नां सहस्रं च स याति परमां गतिम्।
श्री कीर्तिर्धीर्धृतिस्तुष्टिः संततिश्च निरामया।।१७।।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरैश्वर्याद्याश्च सिद्धयः।
सर्वभूतसुहृत्त्वं च लोके वृद्धि परा मतिः।।१८।।
भवेत्प्रातश्च मध्याह्नं सायं च जपतो हरेः।
नामानि ध्यायतो राम सान्निध्यं च हरेर्भवेत्।।१९।।
अयने विषुवे चैव जपन्त्वालिख्य पुस्तकम्।
दद्याद्वै यो वैष्णवेभ्यो नष्टबन्धो न जायते।।२०।।
न भवेच्च कुले तस्य कश्चिल्लक्ष्मीविवर्जितः।
वरदो भार्गवस्तस्य लभते च सतां गतिम्।।२१।।
इति श्री अग्निपुराणे दाशरथिरामप्रोक्तं परशुराम
सहस्रनामस्तोतं संपूर्णम्। श्री भार्गवार्पणमस्तु।
।।श्रीरस्तु।।

श्री भार्गव—कवचम्

गम्भीरो माहात्म्यात्प्रशमशुचिरत्यन्तसुजनः
प्रसन्नः पुण्यानां प्रचय इव सर्वस्य सुखदः।
प्रभुत्वस्योत्कर्षात्परिणति विशुद्धेश्च तपसा-
मसौ दृष्टः सत्त्वं प्रबलयति पापं च नुदति।।

।। श्री गणेशाय नमः।।

श्री नारायण उवाच।

कैलासशिखरे रम्ये शंकरं लोकशंकरम्।
कैवल्यचरणं गौरी पप्रच्छ हितमद्भुतम्।। १।।

पार्वत्युवाच।

देवदेव महादेव देवेश वृषभध्वज।
त्वत्तः श्रुतान्यशेषाणि जामदग्न्यस्य साम्प्रतम्।। २।।
हरेरंशावतीर्णस्य मन्त्रयन्त्रादिकान्यलम्।
न श्रुतं कवचं देव न चोक्तं भवता मम।। ३।।
वक्तुमर्हसि देवेश भक्तायै गुह्यमप्युत।
इति पृष्टः स गिरिशो मन्त्रयन्त्राङ्गतत्त्ववित्।। ४।।
उवाच प्रहसन्देवीं हिताय जगतामिदम्।
रहस्यमपि हि ब्रूयुर्लोकैकहितदृष्टयः।। ५।।

शिव उवाच।

शृणु प्रिये प्रियमिदं मम गुह्यतरं परम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामनायासं सुसिद्धिदम्।। ६।।
एकमौपयिकं मन्ये विष्णुवक्षःस्थलालयाम्।
श्रियमाक्रष्टुकामानामिदं कवचमुत्तमम्।। ७।।
एकातपत्रसहितां य इच्छेत्सागराम्बराम्।
स जामदग्न्यकवचं नित्यमावर्तयेन्नरः।। ८।।
उद्दण्डशरुादोर्दण्ड प्रचण्डरिपुमण्डलम्।
कथंजयेयुर्वीरेन्द्राः कवचानावृताङ्गकाः।। ९।।
परप्रयुक्त कृत्यादिदोषो भूतादयोऽपि वा।
प्रयान्ति भीता रामस्य वर्मणा वीक्ष्य रक्षितम्।।१०।।
किमन्यैः कवचैर्देवि किमन्यैर्मनुभिश्च वा।
जामदग्न्यः परं यस्य दैवतं भृत्यवत्सलः।।११।।
कवचस्यास्य गिरिजे ऋष्यादिन्यासकल्पनम्।

मूलमन्त्रोक्तविधिना कारयेत्साधकोत्तमः।।१२।।
अस्य श्रीभार्गवकवचस्तोत्रमन्त्रस्य अङ्गिरा ऋषिः, बृहतीछन्दः, श्रीमान्जामदग्न्यो देवता, श्रीभार्गवरामप्रीत्यर्थे भार्गवकवचस्तोत्रजपे विनियोगः।

अथ करन्यासः।

ॐ रां रामाय नमः अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ रां रामाय नमः तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ रां रामाय नमः मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ रां रामाय नमः अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ रां रामाय नमः कनिष्ठकाभ्यां नमः।
ॐ रां रामाय नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।।

अथ षडङ्गन्यासः।

ॐ रां रामाय नमः हृदयाय नमः।
ॐ रां रामाय नमः शिरसे स्वाहा।
ॐ रां रामाय नमः शिखायै वषट्।
ॐ रां रामाय नमः कवचाय हुम्।
ॐ रां रामाय नमः नेत्रत्रायाय वौषट्।
ॐ रां रामाय नमः अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्।

उद्योर्दण्डचलत्कुठारशिखरस्फारस्फुलिङ्गङ्कुर
व्रातामोघमहास्त्रनाशितजगद्विद्वेषिवंशाटवीम्।
वन्दे भार्गवमुग्रकार्मुकधरं शान्तं प्रसन्नाननम्,
वीरश्रीपरिचुम्ब्यमानमहितस्वब्रह्मतेजोनिधिम्।।१३।।
ॐ जामदग्न्यः शिरः पातु पातु मूर्धानमूर्ध्वदृक्।
ललाटं ललितः पातु भ्रुवौ भृत्यार्तिनाशनः।। १४।।
श्रवसी सुश्रवा मेऽव्यात्कर्णौं कर्णान्तलोचनः।
नेत्रे गोत्रार्तिहा मेऽव्याल्लोचने भवमोचनः।। १५।।
गण्डे मे खण्डपरशुः कपोलौ पातु शीलवान्।
नासे सुनासः पायान्मे नासिके दासवत्सलः।। १६।।
रसनां रसरूपोऽव्याद्रसज्ञां रेणुकासुतः।
अधरौ पातु मे नित्यमधरीकृतशात्रवः।। १७।।
वक्त्रं चित्रचरित्रोऽव्याद्दन्तान्दन्तीन्द्रविक्रमः।
चुबुकं रिपुजित्पातु ग्रीवां श्रीवत्सलान्छनः। १८।।
स्कन्धौ मे स्कन्दविजयी कक्षे मे क्षत्रियान्तकः।
भुजौ मे सततं पातु सहस्रभुजशासनः।। १९।।

करौ हितकरः पातु पाणी क्षोणी भरापहः।
अङ्गुलीर्मङ्गलगुणो नखानि मखकृन्मम।। २०।।
वक्षः पातु ममाभीक्ष्णं क्षतजाभिषवप्रियः।
उरः पुरुषवीरो मे पार्श्वौ पातु परश्वधी।। २१।।
उदरस्थजगत्पायादुदरं मम सर्वदा।
भयापहोऽव्यान्नाभिं मे मध्यं निध्यातविष्टपः।। २२।।
लिङ्गं शंकरशिष्योऽव्यादुपस्थं निस्तुलप्रभः।
पाय्वपानं च मे पायात्सायकासनवान्सदा।। २३।।
त्रिः सप्तकृत्वः कुलहा त्रिकं मेऽवतु सर्वदा।
परमेष्ठ्यवतात्पृष्ठं पिठरं दृढ़ विक्रमः।। २४।।
ऊरु मेरुसमः पातु जानू मे जगतां पतिः।
जङ्घे संघातहन्ताव्यात्प्रपदे विपदान्तकः।। २५।।
पादौ मे पादचार्यव्याच्चरणौ करणानिधिः।
पादाङ्गुलीः पापहा मे पायात्पादतले परः।। २६।।
परश्वधधरः पायाद्रामः पादनखानि मे।
पूर्वाभिभाषी मां पायात्पूर्वस्यां दिशि संततम्।। २७।।
दक्षिणस्यामपि दिशि दक्षयज्ञान्तक प्रियः।
पश्चिमस्यां सदा पायात्पाश्चात्याम्बुधिमर्दनः।। २८।।
वित्तेशरक्षिताशायां पायान्मां सत्तमार्चितः।
सर्वतः सर्वजित्पायान्ममाङ्गानि भयात्प्रभुः।। २९।।
मनो महेन्द्रनिलयश्चित्तं मे दृप्तनाशनः।
बुद्धिं सिद्धार्चितः पायादहंतामनहंकृतिः।। ३०।।
कर्माणि कार्तवीर्यारिर्हेलां हैहयवंशहा।
हरत्वमोघदृङ् मोहं क्रोधं च क्रोधदर्पहा।। ३१।।
श्रियं करोतु मे श्रीशः पुष्टिं मे पुष्टिवर्धनः।
संतानं सततं दद्याद्भृगुसंतानभूरुहः।। ३२।।
आयूंषि मे वितनुतादार्यः परमपूरुषः।
आशां मे पूरयत्वाशु कश्यपार्पितविष्टपः।
श्रीमान्परशुरायो मां पातु सर्वात्मना सदा ॐ।। ३३।।
इत्येतत्कवचं दिव्यमभेद्यं मन्त्रयन्त्रिभिः।
कथितं देवि ते गुह्यं प्रियेति परमाद्भुतम्।। ३४।।
न नास्तिकाय नादात्रे न चाश्रद्धालवे प्रिये।
देयान्नाविनीतायैतन्नाभक्ताय कदाचन।। ३५।।
नाजापकाय नाज्ञात्रे नासत्यवचसे क्वचित्।
नामालामन्त्रिणे देवि प्रदेयं नाप्यमन्त्रिणे।। ३६।।

देयं श्रद्धालवे भक्त्या प्रणताय नतात्मने।
गुणान्विताय शुद्धाय मन्त्रगोप्त्रे च मन्त्रिणे।। ३७।।
अवश्यमेतज्जप्तव्यं त्रिसंन्ध्यं नियमान्वितैः।
मन्त्रावसाने मन्त्रज्ञै रचितं मन्त्रसिद्धये।। ३८।।
वर्मैतच्च जपेन्मन्त्री जपेद्वा सततं मनुः।
आसेचितादिव तरोः फलं नाप्नोति सद्रसम्।। ३९।।
जयकामो भूर्जपत्रे रक्तबिन्दुभिरुज्ज्वलैः।
लिखित्वावर्तयेद्रात्रौ कवचंशतसंख्यया।। ४०।।
संपूज्य धूपदीपाद्यैर्ध्यात्वा च हृदि भार्गवम्।
हस्ते बध्वा रणं गत्वा विजयश्रियमाप्नुयात्।। ४१।।
एवं संप्रस्थितस्यास्य विद्यावादे रणेऽपि वा।
वाचस्पतिर्वा शक्रो वा वश्यः स्यात्किमुतापरे।। ४२।।
अथवा तिलकं कृत्वा रक्तक्षोदेन भामिनी।
कवचेनाभिजप्तेन गच्छन्जयमवाप्नुयात्।। ४३।।
श्रीकामस्तु महेन्द्राद्रेर्द्रोणिं गत्वा मनोहराम्।
तत्र मण्डलमास्थाय चण्डभानुं विलोकयन्।। ४४।।
जपेदिदं महद्वर्म प्रत्यहं शतसंख्यया।
मण्डलान्ते श्रियं श्रेष्ठां लभते भार्गवाज्ञया।। ४५।।
सिद्धयो विविधास्तस्य दिव्यज्योतिर्लतालयः।
सिध्यन्ति सिद्धवन्द्यस्य कृपया विस्मयावहाः।। ४६।।
भूतप्रेतपिशाचश्च रोगाश्च विविधाशुभाः।
दुष्टा नृपास्तस्कराश्च व्याघ्रसिंहगजादयः।। ४७।।
श्रीमद्भृगुकुलोत्तंसदंशदंशितमद्रजे।
दृष्टवैव हि पलायन्ते मृत्युं दृष्ट्वैव हि प्रजाः।। ४८।।
जामदग्न्यस्य यो वाञ्छेत्सान्निध्यं योगिदुर्लभम्।
दारिद्रियदुःखशमनं संसारभयनाशनम्।। ४९।।
स महेन्द्रस्य शिखरे स्नात्वोपस्थाय भास्करम्।
तन्मध्यवर्तिनं शान्तं जटामण्डलमण्डितम्।। ५०।।
परश्चधाधानुर्दण्डराजितां सद्वयान्वितम्।
अक्षसूत्रं सुविभ्राणं दक्षिणेऽङ्गुलिपल्लवे।। ५१।।
वामजानुतलन्यस्तवामपाणि कुशेशयम्।
उन्मज्ञज्ज्वलम् ग्रीवमामीलित विलोचनम्।। ५२।।
सुप्रसन्नमुखाम्भोजं सुस्मितं पल्लवाधरम्।
सुन्दरं सुन्दरापाङ्गं भोगिभोगभुजद्वयम्।। ५३।।
भक्तानुग्राहकं देवं जामदग्न्यं जगत्पतिम्।

ध्यायन्तमात्मनात्मानं ध्यायेत्प्रणतवत्सलम्।। ५४।।
अथ द्वादशभिः पुण्यैर्नामभिः पापहारिभिः।
जपतामिष्टदैर्भृत्यपारिजातं समर्चयेत्।। ५५।।
जामदग्न्यो जनन्नेता ब्रह्मण्यो ब्रह्मवत्सलः।
कीर्तवीर्यकुलोच्छेत्ता क्षत्रवंशप्रतापनः।। ५६।।
विश्वजिद्दीक्षितो रामः कश्यपाशासुरद्रुमः।
परश्वधधरः शान्तो महेन्द्रकृतकेतनः।। ५७।।
एतैर्द्वादशभिर्दिव्यैर्गोप्यैरभ्यर्च्य नामभिः।
उपतिष्ठेत्पुनर्गुह्यैर्मुख्यैर्नामभिरीश्वरम्।
क्षिप्रप्रसादजननैश्चतुर्वर्गफलोदयैः।। ५८।।
हन्त ते संप्रवक्ष्यामि तान्यपि प्रणतासि यत्।
इमानि गौरि नामानि सुगोप्यानि सतामपि।। ५९।।
ॐ हंसत्रयीमयो धाता योगीन्द्रहृदालयः।
त्रिधामा त्रिगुणातीतस्त्रिमूर्तिस्त्रिजगन्मयः।। ६०।।
नारायणः परं ब्रह्म परं तत्त्वं परात्परः।
भार्गवो धर्मचरणो भर्गरूपः सतां गतिः।। ६१।।
इति षोडशभिः स्तुत्वा नामभिऋर्षिपुंगवम्।
सर्वाशिषां पतिं देवं सकलाभीष्टदायकैः।। ६२।।
आत्मानं विन्यसेदङ्गेष्वनेन कवचेन सः।
मृगीमुद्रिकया धीमान्वज्रसारेण सारवित्।। ६३।।
दशचारं प्रतिदिनं मासमेकं समाचरेत्।
स्पप्ने पश्यति देवेशं भार्गवं भृगुनन्दनम्।। ६४।।
चिन्तितार्थप्रदं सौम्यं चिन्तामणिमिवापरम्।
मासत्रयं तु विन्यस्ते साक्षात्पश्यति जापकः।। ६५।।
मनसः संप्रसादेन लब्ध्वा वरमनुत्तमम्।
अणिमादिगुणैर्युक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्।। ६६।।
अथवा योगसिद्धिं यो धातु सिद्धिं च वाञ्छति।
कुरुक्षेत्रे महेन्द्रे वा जपेदयुतमात्मवान्।। ६७।।
सर्वाश्चौषधयस्तस्य खेचरत्वादिसिद्धिदाः।
रससिद्धिप्रदाश्चापि सिध्यन्त्यस्य न संशयः।। ६८।।
महेन्द्राद्रिरिव क्षेत्रं सिद्धिदं नास्ति भूतले।
जामदग्न्य इवान्योऽस्ति न देवो भृत्यवत्सलः।। ६९।।
प्रस्फुरद्गुणसौवर्णराशीनां जन्मभूः परः।
तथेदमिव वर्मान्यद्धर्मादिफलदं न हि।। ७०।।

कवचेऽस्मिन्सकृञ्जप्ते मन्त्रावृत्ति सहस्रजम्।
फलमाप्नोत्यविकलं तस्मान्नित्यं जपेन्नरः।। ७१।।
अमन्त्री वापि मन्त्री वा भार्गवे भक्तिमान्नरः।
जपेन्नित्यमिदं वर्म मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात्।। ७२।।
सारस्वतमिदं देवि कवचं वाक्प्रदं नृणाम्।
मूकोऽपि वाग्मी भवति जपन्नेतद्गुरुर्यथा।। ७३।।
नित्यं परश्वधभृतः कवचस्यास्य धारणात्।
सभासु वदतां श्रेष्ठो राज्ञां भवति च प्रियः।। ७४।।
वैदिकं तान्त्रिकं चैव मान्त्रिकं ज्ञानमुत्तमम्।
कवचस्यास्य जापी तु ब्रह्मज्ञानं च विन्दति।। ७५।।
इत्येतदुक्तं कवचं मया हैहयविद्विषः।
गोपनीयमिदं देवि ममात्मासि मणिर्यथा।। ७६।।
धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रीकरं पुष्टिवर्धनम्।
जपतां कवचं नित्यं सर्वसौभाग्यपूरितम्।। ७७।।

इति श्री विष्णुयामले उपरिभागे जामग्न्यदिव्याञ्जनसिद्धि-
कल्पे त्रयस्त्रिंशत्पटलः।। श्री भार्गवार्पणमस्तु।।

।। श्रीभार्गवकवचं संपूर्णम्।।



परिशिष्ट (ग)

श्री परशुराम चालीसा

दोहा

भुक्ति मुक्ति सुखसम्पदा जिन चरणन की चेरि।
मात रेणुका लाल के उन चरणन रति मेरि।।
विमल हृदय वाणी वरद जगत विदित जयगीत।
मानव मन मन्थन करें भार्गव प्रभु की जीत।।

चौपाई

बन्दहुँ भृगु कुल कमल पतंगा। सदा रहत निज जन के संगा।।
दया सिन्धु करुणा कर स्वामी। तुम घट घट के अन्तर यामी।।
ऋषि जमदग्नी पिता तुम्हारे। मात रेणुका के तुम प्यारे।।
शीष जटा मुख तेज विराजे। अरू त्रिपुण्ड मस्तक पर राजे।।
रूद्रमाल गल सुन्दर सोहे। वक्ष विशाल वीर मन मोहे।।
ब्रह्म सूत्र कान्धे पर साजे। कटि मृगछाल मेखला राजे।।
तेज पुंज पीताम्बर धारी। भक्त जनन के संकट हारी।।
एक हाथ में परशु विराजे। दूजे वेद संहिता साजे।।
प्रबल पीठ पर शर धनु सोहे। प्रलयङ्कर शंकर मन मोहे।।
शास्त्र शस्त्र अधिकार समाना। हो समर्थ तुम कृपा निधाना।।
दम्भ दलन सज्जन सुखदाता। भू मण्डल के भाग्य विधाता।।
चारों वेदों के तुम ज्ञाता। चार पदारथ के तुम दाता।।
चारों युग परताप समाना। अजर अमर तुम हे भगवाना।।
कार्तवीर्य अर्जुन हंकारी। भा विधि वाम गई मति मारी।।
तपोनिष्ठ जमदग्नी ज्ञानी। तिनसे की उसने मनमानी।।
हारा रण जिन सैन्य नसाई। काम धेनु तब लई चुराई।।
ऋषिवर बैठे ध्यान लगाई। खल पुत्रों ने तेग चलाई।।
ऐसे धर्म विरोधी मारे। सुर मुनि जन प्रभु तुम उद्धारे।।
त्रेता युग मे हे! भगवाना। शिव धनु भंग हुआ तुम जाना।।
छोड़ तपस्या दौड़े आये। गुरु धनु भंजक मारण धाये।।
राम कहा धनु भंजन हारा। दशरथ सुत मैं दास तुम्हारा।।
राम विनय सुनि तुम हर्षाये। खिंचवा धनुष राम परताये।।

परम पुरुष अवतारी चीन्हा। वैष्णव धनुष राम कहँ दीन्हा।।
ब्रह्म तेज गहि जोड़े हाथा। तब आशीष जीते रघुनाथा।।
चिरंजीव द्वापर में आ के। योग्य शिष्य भीष्मादिक पा के।।
राम! तुम्हीं ने शिक्षा दीन्ही। द्रोण कर्ण सब ही ने लीन्ही।।
वेद पाठ कर मुनि जन साथा। कीन्हो तिलक युधिष्ठिर माथा।।
कश्यप ऋषि की आज्ञा पा के। गिरि महेन्द्र के ऊपर जा के।।
कलियुग में सिद्धासन पा के। बैठे प्रभु का ध्यान लगा के।।
इक्किस बार भार भुवि तारा। जन द्रोही क्षत्रप संहारा।
दशरथ जनक समान उबारे। सज्जन से नहिं बैर तुम्हारे।।
चारों वरण समान तुम्हारे। सबके रक्षक पालन हारे।।
बालक युवा वृद्ध अरू नारी। जो कोई हो शरण तुम्हारी।।
लेत लाभ जीवन सुख राशी। देते तुम कल्पान्त निवासी।।
कर पितु मातु प्रसन्न गुसाँई। अष्ट सिद्धि पावा तुम साँई।।
ऋषि जन की तुम रक्षा कीन्ही। सबने मिलकर आयसु दीन्ही।।
परशुराम प्रभु को जो ध्यावे। ऋद्धि सिद्धि कुल वृद्धि पावे।।
जो यह चालीसा नित गावे। तेहि घर सकल सम्पदा आवे।।
संकट कटै घटै दुख भारी। जो सुमिरै भार्गव सुविचारी।।
जो यह परशु राम पद गावै। पूर्ण मनोरथ का फल पावै।।

। दोहा।

भृगु नन्दन दुख भंजना, आयो शरण तुम्हारि।
करहुं कृपा कलिमल दहन, लीज्यो खबर हमारि।।

।। बोलो भगवान परशुराम की जय।।
।। श्री परशुराम चालीसा सम्पूर्ण।।

भगवान् परशुराम जी की
—आरती—

जय भृगुनन्दन, दुष्ट निकन्दन, जन-जन हितकारी।
वीर तपस्वी हे ओजस्वी, जीवन सुखकारी।।
पिता तुम्हारे ऋषि जमदग्नि, सती रेणुका माता।
दिया ऋचीक ऋषि ने वर तुम बने वीर विख्याता।
चारों युग परताप तुम्हारा, तेज पुंज बलधारी।। जय भृगु नन्दन . . .

शीश जटा मुख तेज छटा, अरू कण्ठ माल साजे।
कटि मृगछाला वक्ष विशाला, तिलक भाल राजे।
एक हाथ में परशु तुम्हारे, कांध धनुर्धारी।। जय भृगु नन्दन . .

कार्तवीर्य अर्जुन राजा ने, कामधेनु थी चुराई।
हने तपस्या मग्न महामुनि, दीनप्रजा लुटवाई।
ऐसे धर्म विरोधी मारे, पृथ्वी उद्धारी।। जय भृगु नन्दन . . .

दिव्य धनुष दे रामचन्द्र का बल त्रेता में बढ़ाया।
कृष्ण संग द्वापर में कौरव पाण्डव को समझाया।
कलियुग में हिमगिरि के ऊपर, करते तप भारी।। जय भृगु नन्दन .

ऋषियों ने वरदान दिया, जो दर्श तुम्हारा पावे।
ऋद्धि सिद्धि कुलवृद्धि उन घर विपद् न आने पावे।
मिटे दीनता बढ़े मनोबल, पुण्य लाभ भारी।। जय भृगु नन्दन . . .

परशुराम बलराम तुम्हारी, आरती जो कोई गावे।
सफल मनोरथ होवे उसका, वांछित फल पा जावे।
तुम रक्षक हो सदा हमारे, हम हैं शरण तुम्हारी।। जय भृगु नन्दन



परिशिष्ट (ङ)

विशेष सम्बद्ध स्थानों का विवरण

देश एवं धर्म की रक्षा के लिए भगवान् परशुराम जहाँ-जहाँ भी गये, वे सभी पवित्र स्थान हमारे वन्द्य हैं। यहाँ उन सभी पवित्र-स्थानों की सूची देकर कतिपय अत्यन्त प्रसिद्ध स्थलों का विवरण भी प्रस्तुत किया जा रहा है—

अमरकंटक, अमृतेश्वरतीर्थ, अश्वतीर्थ, अहिक्षेत्र, आई होली, आदित्र्यम्बक, आनर्तप्रदेश, उत्तरकाशी, औशनसतीर्थ, कदलीमठ, कन्याकुमारी, कल्माषतीर्थ, कांगड़ा, किंजारगिरी, कुंडिवा, कुरुक्षेत्र, कुशस्थली, कृष्णामलापहारी संगम, केदारनाथ, कैलाशनाथ, कोजरा, कोटीतीर्थ, कोटाहलपुर, खाटी, खैरधिहा, गदातीर्थ, गंधमादन पर्वत, गया, गुंज, गोकर्णमहाबलेश्वर, गोदावरी, गोनी संगम तीर्थ, गोपेश्वर गोमातक, गोमांत पर्वत, गोमुख तीर्थ, गोष्पादतीर्थ, चन्द्रगुट्टी, चन्द्रेश्वर तीर्थ, चमत्कारपुर, चिक्कनयंकलहली, जमदग्नितीर्थ, जमनिया, जमेथा, जानायाव, जामणि, जामुग्राम, ज्वालादेवी, टाकली, डाका, तीर्थनहली, थिरूवेल्लम्, दण्डकारव्य, दशाश्वमेधतीर्थ, दतिया, दीप्तोदतीर्थ, देवगांव, धात्रीग्राम, धाबड़शी, नाकुरी, निर्मल, त्रिष्कलंक-महेश्वरी, नृमुण्ड, नेमावर, परशुराम कुण्ड, परशुराम तीर्थ, परशुरामपुर, पाकजतीर्थ, पेशावर, प्रयाग, फरसु, बदरिकाश्रम, बकसर, बालिया, पुणे, गंगा-नर्मदा संगम, भृकुटेश्वर, भृगु आश्रम, भृगुकच्छ, भृगुतीर्थ, भृगुतुँग, भृग्वाश्रम, भण्डाघाट, मणिकूटपर्वत मत्रालय, मलापहातीर्थ, महेन्द्र पर्वत, माहुली, मुझपरपुर, मुंडाजे, मेरुमती नदी, रंभोद्धार, रामतीर्थ, रामेश्वरलिंगम्, रुणकता, रेणुका झील, रेणुका तीर्थ, रेणुकाष्टक तीर्थ, रेवा नदी, रैनागिरी, लोहारगल, लोहारप्पा, वैदूर्यपर्वत, वाराणसी, शाकरतीर्थ, शिंपा, शिवतीर्थ, शुक्राचार्याश्रम, शूर्पाणेश्वर, शूर्पारक, शूर्पालसंगम, श्री परशुराम महादेव, संगलेश्वर, सप्तमोक्षतीर्थ, सम्भल, सहस्राम, सिद्धभृगुक्षेत्र, सुमेरू पर्वत, सोदती आदि-आदि।

१. क्रौंचरन्ध्र—क्रौञ्च पर्वत में बना छेद। कालिदास के मत के अनुसार वर्षाकाल में हंसादि पक्षी इसी छेद से होकर मानसरोवर जाते हैं। जब क्रौंच पर्वत को फाड़ने से स्कन्द को अभिमान हो गया, तब महादेव के शिष्य परशुराम ने उनका अभिमान चूर-चूर करने के लिए क्रौंच पर्वत में ऐसा बाण मारा जो क्रौंच पर्वत को बेंधता हुआ पार कर गया। वही "क्रौंच रन्ध्र" हुआ।

इसे आजकल 'नीतिमाणा' दर्रा कहते हैं, जो गढ़वाल और कुमाँयूँ की सीमा-सन्धि में है। [मेघदूत(पूर्व), ५९]

२. खाटी—किसी सिद्ध पुरुष की प्रेरणा से फगवाड़ा (पंजाब) से तीन मील की दूरी पर होशियारपुर रोड पर सिख बन्धुओं द्वारा बनाया गया भगवान् परशुराम का भव्य मन्दिर है। भक्त जन यहाँ आकर नवीन स्फूर्ति प्राप्त करते हैं।

३. गोकर्ण—बम्बई प्रान्त के उत्तर कनारा जिले और कुन्ता तालुके में कुन्ता नगर से १० मील उत्तर हिन्दूओं का पवित्र स्थल है। रावण एवं कुम्भकरण ने यही पर तप किया

था। (कालिदास ग्रन्थावली) वहीं पर महाबलेश्वर का मन्दिर है। शुष्कमित्रादि मुनियों की प्रार्थना पर भगवान् परशुराम ने इसी स्थान को समुद्र से खाली कराया था।

यह समुद्र के मध्य में विद्यमान, त्रिभुवन विख्यात और अखिल लोकवन्दित तीर्थ है। वहाँ ब्रह्मादि देवता, तपोधन महर्षि और भूत यक्षादि भगवान् शंकर की उपासना करते हैं। यहाँ भगवान् शिव की पूजा करके तीन रात तक उपवास करने वाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है और गणपतिपद को प्राप्त कर लेता है। (महाभारत, वनपर्व ८५, २४-२७)

४. जामणि—हरियाणा प्रान्त के जीन्द के पास एक ग्राम, जहाँ पर महर्षि जमदग्नि का प्राचीन मन्दिर तथा तालाब हैं। यहाँ पर स्नान करने से मनुष्य पुण्य का भागी होता है।

५. महेन्द्र पर्वत—कोंकण प्रान्त निकटवर्ती एक पर्वत, यहाँ परशुराम जी का आश्रम था। दुष्ट क्षत्रियों का नाश कर भगवान् परशुराम ने यहीं तपस्या की थी। (महाभारत, आदि पर्व, ६४, ४ तथा आदि पर्व, ६२९, ५३)। इस पर जाकर रामतीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। चतुर्दशी तिथि को परशुराम जी ने महेन्द्र पर्वत पर पधारकर युधिष्ठिर आदि को दर्शन दिये थे। (वही, वनपर्व, ११७, १६)। सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप को देकर उनकी आज्ञा से परशुराम जी महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। (वही द्रोणपर्व, ७०, २२-२३ तथा वन पर्व ११७, १४)। इसी पर्वत से हनुमान जी सीताजी की खोज के लिए लंका गये थे।

६. रामतीर्थ—परशुराम सेवित महेन्द्र पर्वत पर स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करने से अश्वमेधयज्ञ का फल मिलता है। (वही, वनपर्व, ८५,१७)।

७. रेणुकातीर्थ—हिमाचल प्रदेश में ददाहु के निकटवर्ती सिद्ध सेवित एक तीर्थ, जिसमें स्थान करके ब्राह्मण चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाता है। (वही, वनपर्व, ८२-८२)। यहाँ भगवती रेणुका तथा भगवान् परशुराम के प्राचीन मन्दिर हैं। यहाँ भगवती रेणुका के शरीर की आकृति का और उनके चरणों में भगवान् परशुराम का जलमय तीर्थ है। यहाँ कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी को एक बड़ा भारी मेला लगता है। एक जन श्रुति के अनुसार इसी मध्य भगवान् अपनी माता के दर्शनों की इच्छा से यहाँ पधारते हैं।

रेणुकातीर्थ के निकटवर्ती धगौण आश्रम के ब्रह्मचारी श्री १०८ प्यारानन्द जी के आशीर्वाद से लाखों रुपयों की लागत से यात्रियों की सुविधा के लिए एक विशाल धर्मशाला का निर्माण हुआ है। इस धर्मशाला के मन्दिर में स्थापित 'वेद माता गायत्री' की भव्यमूर्ति श्रद्धालुओं में ज्ञान का संचार करती है। परमात्मा ब्रह्मचारी प्यारानन्द जी पर बड़े कृपालु रहे, जो इस स्थान का विकास करते रहे।

रेणुका तीर्थ से कुछ दूरी पर 'जमदग्नि का टीला' है। कहते हैं कि यहाँ पर महर्षि जमदग्नि ने वर्षों तक तपस्या की थी। अब भी उस स्थान पर भस्म निकलती है।

८. शूर्पारक—एक पश्चिम भारतीय जनपद, जिसे दक्षिण दिग्विजय के अवसर पर

सहदेव ने जीता था। यहाँ भगवान् परशुराम सेवित शूर्पारक तीर्थ है। इसमें जाकर रामतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को प्रचुर स्वर्ण राशि की प्राप्ति होती है। (महाभारत, वनपर्व, ८५, ४३)। इस शूर्पारक क्षेत्र में महात्मा जमदग्नि की वेदी है, वहीं रमणीय 'पाषाणतीर्थ' और 'पुनश्चन्द्रा' नामक तीर्थ विशेष है। (वनपर्व, ८८,१२)

समुद्र ने परशुराम के लिए जगह खाली करके शूर्पारक देश (वर्तमान केरल प्रान्त) का निर्माण किया था, जिसे 'अपरान्त भूमि' भी कहते हैं। (वही, शान्ति पर्व, ४९, ६६-६७)। शूर्पारक जल के क्षेत्र में स्नान करके एक पक्ष तक निराहार रहने से मनुष्य दूसरे जन्म में राजकुमार होता है। (वही अनुशासन पर्व, २५, ६७)।

९. समन्त पञ्चक (रामह्रद)—हरियाणा में जीन्द के निकट राम राय में चौबीस एकड़ भूमि में स्थित एक तीर्थ है। यहाँ परशुराम जी ने रक्त के पांच सरोवर बनाकर रक्तांजलि द्वारा अपने पितरों का तर्पण किया था। (वही, आदिपर्व २, ४-५ तथा वनपर्व, ११७, ९-१०)। परशुराम जी के पितरों के वरदान से यह एक प्रसिद्ध तीर्थ हो गया (वही आदि पर्व २, ८-११) तथा (वामन पुराण, ३५, ८-११)। समेतानाम् अन्तो यस्मिन् तत् समन्तम्—इस व्युत्पत्ति के अनुसार इस क्षेत्र का नाम "समन्त पञ्चक" पड़ा।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर एक बार भगवान् कृष्ण के साथ बलराम ने आकर यहाँ अपने पितरों का तर्पण किया था। एक जनश्रुति के अनुसार भगवान् राम भी इस स्थान पर आये थे—

"राम खुदाय रामरा, लक्ष्मण बांधे पाल।
टोकरी ढोवे जानकी, रामचन्द्र की नार।"

इस क्षेत्र में दुर्योधन का निधन हुआ था (महाभारत, शल्यपर्व, ३९-४०) अब यहाँ परशुराम जी के अपने माता-पिता के साथ दो प्राचीन मन्दिर हैं। रामह्रद के तट पर ब्राह्मण सभा का संस्कृत महाविद्यालय भी चल रहा है।



आधारभूत सन्दर्भ-संकेत-ग्रंथावलिका

१. श्री परशुराम वैभवम्
२. वामनपुराण
३. श्रीमद्भागत पुराण
४. वाल्मीकि रामायण
५. अद्भुतरामायण
६. आनन्द रामायण
७. हनुमन्नाटक
८. महाभारत
९. ब्रह्मवैवर्तपुराण
१०. शिवपुराण
११. कल्किपुराण
१२. स्कन्द पुराण
१३. परशुराम दिग्विजय
१४. नृसिंह पुराण
१५. परशुराम की प्रतीक्षा
१६. रश्मिरथी
१७. रेणुका माहात्म्यम्
१८. रामचरितमानस
१९. श्रीमद्भगवद्गीता
२०. मनुस्मृति
२१. लोकालोक (विविध रामायण विशेषाङ्क)